VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६४, १२ मार्च –2016

# विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य ( डॉ. ) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

( सञ्चालक )

आदरी सह-सम्पादक :

प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर

होश्यारपुर

डॉ. ( श्रीमती ) कमल आनन्द

चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल

होश्यारपुर

डॉ. ( सुश्री ) रेणू कपिला

पटियाला

## शुल्क की दरें

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| आजीवन ( भारत में ) | : | १२०० रु. | आजीवन ( विदेश में ) | : | ३०० डालर |
| वार्षिक ( भारत में ) | : | १०० रु. | वार्षिक ( विदेश में ) | : | ३० डालर |
| सामान्य अङ्क ( भारत में ) | : | १० रु. | सामान्य अङ्क ( विदेश में ) | : | ३ डालर |
| विशेषाङ्क ( एक भाग भारत में ) | : | २५ रु. | विशेषाङ्क ( एक भाग विदेश में ) | : | ६ डालर |

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 ( पंजाब, भारत )

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक ( निवास ) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

# विषय-सूची


| लेखक | विषय | विधा | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|
| श्री देवनारायण भारद्वाज | श्री टंकारा का लाल लाड़ला | कविता | 2 |
| श्री सीताराम गुप्ता | धर्म का मूल्यांकन करता है धर्मावलंबियों का आचरण तथा गुरु का मूल्यांकन है उसके शिष्यों का आचरण | लेख | 5 |
| श्री कृष्ण गोयल ध्यानयोगाचार्य | होली का वास्तविक स्वरूप | लेख | 8 |
| डॉ. परमिन्द्र कौर | हिन्दी : राष्ट्रभाषा से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की ओर | लेख | 11 |
| श्री मनमोहन आर्य | राग के दुष्परिणाम | लेख | 15 |
| डा. रीना तलवाड़ | गीता में कर्म–प्रबन्धन | लेख | 19 |
| डॉ. सुधांशु कुमार षडङ्गी | पातञ्जलयोगोक्त परिकर्म–परिशीलन | लेख | 21 |
| डॉ. विजय कुमारी गुप्ता | वेदों में वर्णित जल–चिकित्सा | लेख | 27 |
| डा. डायालाल मालदेभाई मोकरिया | अभिज्ञानशाकुन्तल में ऋषित्रिपुटी | लेख | 30 |
| डॉ० रंजू उनियाल | महाकवि कालिदास की जन्मभूमि गढ़वाल और उनके साहित्य में वर्णित हिमालय | लेख | 32 |
| सुश्री ज्योती बाला | डा. सत्यव्रत शास्त्री का संस्कृत-साहित्य को योगदान | लेख | 38 |
| श्री गुलशन शर्मा | किरातार्जुनीय और राजनैतिक स्वच्छता | लेख | 43 |
| | संस्थान–समाचार | | 46 |
| | विविध–समाचार | | 48 |

# विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६४ होश्यारपुर, फाल्गुन २०७२; मार्च २०१६ संख्या १२

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्

यशाः सोमो अजायत ।

यशा विश्वस्य भूतस्य

ऽहमस्मि यशस्तमः ॥

(अथर्व., 6. 58.3 )

इन्द्रदेव (यशाः) महिमा वाला हो रहा है । अग्निदेव (यशाः) महिमा वाला हो रहा है । (सोमो) सोमदेव (यशाः) महिमा वाला हो रहा है । इसी प्रकार मैं भी (विश्वस्य) सभी (भूतस्य) लोगों के बीच में (यशाः) महिमा वाला हो रहा हूं । (अहमस्मि यशस्तमः) मैं सबसे बढ़कर महिमा वाला हो रहा हूं ।

वेदसार

विश्वबन्धुः

टंकारा से मूलशंकर के अभिनिष्क्रमण की काव्यकथाः

# टंकारा का लाल लाड़ला

**–श्री देवनारायण भारद्वाज**

मेलों में मेला अलबेला, यह सुरभित कर मेला आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

जहाँ यशोदा अमृतावेन, माँ की कातर वाणी होगी।
जहाँ पिता कर्षन का शासन, शुभ शिव-भक्ति भवानी होगी।
जहाँ दम्पति की पुत्र कामना, वर वात्सल्य कहानी होगी।
जहाँ मूलशंकर का बचपन, लय लीला लासानी होगी।
डेमी सरिता के सिक्ताकण, करके स्पर्श किनारा आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

जन्में थे जहाँ मूलशंकर, उस घर की ओर चले जाना।
वे जहाँ खेल कर बड़े हुए, उन गलियों में भी हो आना।
उनके जन्मोत्सव नामकरण, वर्षगाँठ के गीत तराना।
पर्व और संस्कारों के सुन, गाना और बजाना आना।
खलियान खेत उद्यान कूप, रुक कर पाठ ठिकाना आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

बालक का नाम मूलशंकर, था शैव पिता ने अपनाया।
दयाराम दयाल सम्बोधन, वैष्णवी मातु के मन भाया।
शिवसूत्र पिता ने सिखलाये, यजुर्वेद भी उन्हें पढ़ाया।
पितु ने दी सीख साधना की, पर मां ने शिशु को दुलराया।
दम्पति के उर का उहावोह, करते आभास जरा आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

श्री देवनारायण भारद्वाज

नगरी के बाहर शिवमन्दिर, जो होगा भले पुराना ही।
सब धन्य दिवालें उसकी हैं, तुम फेरी एक लगाना ही।
मन्दिर विशाल भूमण्डल में, यह नन्हा नहीं भुलाना जी।
इससे ही जागी दुनिया है, दीवाना हुआ जमाना जी।
बोधजन्य बिखरे पराग से, तृणभर बीन प्रेरणा लाना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

शिव रात्रि यहाँ आयी जैसी, जो आयी नहीं कहीं वैसी।
एक मूलशंकर क्या जागे, सारी दुनिया जागी तैसी।
सच्चे शंकर की शोध जगी, पत्थर पिण्डी खिसकी ऐसी।
पूज्य पिता की मूक दशा ने, सुत को दे दी दिशा हितैषी।
वे क्षुधित रात्रि में घर आये, पाया मां से मीठा खाना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

गणपति की मति काया भारी, मूषक उसकी सही सवारी।
कुतर्क जड़-मूढ़ कतरनी पर, गणपति की मेधा जयकारी।
मन मूल महा मेधावी के, चमकी चिन्मय की चिनगारी।
शिव निशा बन गयी बोध दिशा, शिव शोध हुई जग संचारी।
ढल गयी निशा जग गयी उषा, सुन मन्थन की गाथा आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

दृढ़ हुआ ध्येय प्रभुदर्शन का, वैराग्य भाव हो गया उदय।
वे गये बुलाये उत्सव से, देखी भगिनी की मृत्यु अदय।
''मृत्योर्मा अमृतं गमय'' का, चिन्तन निराश्रु होता निश्चय।
अतिशय प्यारे चाचाश्री का, कर गया निधन अति व्यथित हृदय।
ईश्वर जीव जगत त्रय सत्ता, मथ सिद्धान्त महत्ता आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

किशोर मन वैराग्य तरंगें, गुरु मातु पिता ने पहिचानी।
उनके वैवाहिक बन्धन की, कर दी तैयारी मनमानी।

श्री टंकारा का लाल लाड़ला

मधु मण्डप मोद महोत्सव गृह, उसने ठुकराने की ठानी।
प्रिय पुत्र मिलन-हित पथ तकते, माता की आँखें पथरानी।
नवयुवा मूल कंटक पथ की, कुछ चन्दन धूल उड़ा लाना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

कुछ छद्म वेश में सन्त मिले, कुछ सन्त मिले सच्चे ज्ञानी।
कुछ ने ठगे वस्त्र आभूषण, कुछ ने दी विद्या उत्थानी।
बन गये शुद्ध चैतन्य मूल, हो गये सिद्ध पुर प्रस्थानी।
जा पकड़ा वहाँ पिता जी ने, फिर छुटकर हुए अग्रगामी।
यह मिलन विदाई में बदला, अनुभव कर सिद्ध प्रभा आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

चाणोद कर्णाली अरण्य, मिल गये सन्त पूर्णानन्द।
उनकी संन्यास दीक्षा से, चैतन्य हो गये दयानन्द।
किया योग में उनको निहाल, ज्वालानन्द गिरि शिवानन्द।
गुरु विरजानन्द की दिशा मिली, श्रेय सुमङ्गल श्रद्धानन्द।
चाणोद चेतना चरणामृत, व्रजरज की भेंट चढ़ा आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

जड़ता विहीन जगदीश्वर का, जय गान जगाने को निकले।
उसकी कल्याणी वाणी का, श्रुतिगान सुनाने को निकले।
यज्ञ योग सुर-सदाचरण के, वरदान दिलाने को निकले।
जग जननी भारत धरणी का, सम्मान बढ़ाने को निकले।
उद्दण्ड घमण्डी पर चण्डी, लख दण्डी-पगडण्डी आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

टंकारा का लाल लाड़ला, ध्रुव नभ सद्धर्म सितारा है।
सत्यार्थ प्रकाशक सर्वोदय, रवि-शशि विद्युत की धारा है।
अन्याय असत के लिये सत्य, शास्त्रार्थ शूर अंगारा है।
पाखण्ड तिमिर का संहारक, श्रुति वैश्वानर हुंकारा है।
जिसका मूल शिखर दे उसको, दयानन्द दिग्विजयी आना।
हे वासन्ती पवन हवन की, तुम उड़कर टंकारा जाना।।

–'वरेण्यम्' एम० आई० जी० भूखण्ड सं ४५, अवन्तिका ( ए.डी.ए. I )
रामघाट मार्ग, अलीगढ़ 202001 ( उ. प्र. )

# धर्म का मूल्यांकन करता है धर्मावलंबियों का आचरण तथा गुरु का मूल्यांकन है उसके शिष्यों का आचरण

– श्री सीताराम गुप्ता

साधु-संत त्याग, तपस्या और सहनशीलता तथा क्षमा की प्रतिमूर्ति होते हैं इसमे संदेह नहीं। इसी से संत का जीवन अनुकरणीय तथा प्रेरणास्पद होता है। एक शिष्य अथवा अनुयायी की चरितार्थता इसी में है कि वह अपने गुरु के आचरण को जीवन में उतारे। यही बात धर्म के संबंध में भी कही जा सकती है। धर्म वह है जो हमें व्यवस्थित करे, हममें सकारात्मक गुणों का विकास करे। हमें राग-द्वेष,हिंसा, क्रोध, अहंकार, अविद्या, असत्य, असहिष्णुता आदि नकारात्मक भावों से बचाए। एक धार्मिक व्यक्ति की चरितार्थता भी इसी में है कि वह अपने धर्म पर की गई किसी भी टिप्पणी पर उत्तेजित न हो और अपने धर्म के विरोध में बोलने वाले को भी क्षमा कर धैर्य का परिचय दे। यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है अपितु धर्म का अनिवार्य तत्त्व है। यदि कोई व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता है तो वह धार्मिक होने का ढोंग तो कर रहा है लेकिन सही अर्थों में धार्मिक नहीं है क्योंकि किसी भी धर्म की रक्षा के लिए उत्तेजना, अधैर्य, असहिष्णुता अथवा हिंसा का कोई स्थान नहीं है अपितु इनकी निंदा की गई है। प्राय: धर्म की रक्षा के लिए दंभ में हम पूर्णत: अधार्मिक या धर्महीन हो जाते हैं।

कई बार ऐसा होता है कि किसी साधु-संत का जाने-अनजाने में अपमान हो जाता है या उसे सामान्य लोगों के मुकाबले विशिष्ट सम्मान या छूट नहीं मिल पाती तो उसके शिष्य आपे-से बाहर हो जाते हैं। हंगामे और हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। नारेबाज़ी और अभद्र आचरण का प्रदर्शन तो सामान्य बात है कई बड़े नाम वाले गुरुओं के शिष्यों के लिए। इस प्रकार की घटनाएँ शिष्यों या अनुयायियों की पात्रता पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देती हैं और शिष्यों या अनुयायियों का आचरण गुरु की पात्रता पर।

साधु-संत सदैव न केवल नकारात्मक वृत्तियों और भावों के त्याग का उपदेश देते हैं अपितु अपने आचरण से भी उसे सिद्ध करते हैं। उनका आचरण ही उनका संदेश होता है और होना भी चाहिये। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में लिखा है :-

**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।**
**स: यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।3.21**

महापुरुष जो-जो आचरण करता है, सामान्य व्यक्ति उसी का अनुसरण करते हैं। वह अपने अनुसरणीय कार्यों से जो आदर्श प्रस्तुत करता है, संपूर्ण विश्व उसका अनुसरण करता है। सभी संत, सभी महापुरुष राग-द्वेष, घृणा, वैमनस्य, क्रोध, उपेक्षा, ईर्ष्या, अहंकार,

असहिष्णुता, हिंसा आदि के सर्वथा त्याग का उपदेश देते हैं । समता में स्थापित होने की बात होती है। मानापमान, सुख-दुख, लाभा-लाभ आदि परस्पर विरोधी भावों से ऊपर उठने की बात की जाती है । पर क्या ये बातें मात्र सुनने-सुनाने के लिए हैं आचरण में उतारने के लिए नहीं ? गुरु का दर्जा भगवान् से भी ऊँचा माना गया है । गुरु महत्वपूर्ण है । ज्ञान का स्रोत और संवाहक है गुरु। ज्ञान से तात्पर्य सूचनाओं के आदान-प्रदान अथवा भौतिक जगत् की वस्तुओं की जानकारी से नहीं है । शास्त्रों का पठन-पाठन या स्वाध्याय अथवा सत्संग भी ज्ञान नहीं है। ज्ञान है स्वयं की जानकारी । आत्मज्ञान ही सही अर्थों में ज्ञान है । गुरु शास्त्रों के माध्यम से अपने आचरण में रूपांतरण द्वारा ज्ञान का संवाहक बनता है। ज्ञान अर्थात् रूपांतरण का माध्यम है गुरु एक शिष्य के लिए। यदि गुरु अपने आचरण द्वारा शिष्य के रूपांतरण में असफल रहता है तो इसका सीधा-सा अर्थ है कि गुरु स्वयं आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं हुआ है और जिसने आत्मज्ञान नहीं प्राप्त किया, स्वयं का रूपांतरण नहीं किया, वह दूसरों को इसका आभास कैसे करा सकेगा । यदि रूपांतरण की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं होती है तो बाह्य ज्ञान भार के समान है जो मिथ्या अहंकार का कारण बनता है जिसके फलस्वरूप द्वंद्व की उत्पत्ति होती है ।

आज किसी ने किसी के धर्म या धर्मगुरु पर टिप्पणी कर दी तो खून की नदियाँ बहने लगती हैं । धर्म की रक्षा के लिए सरफ़रोशी की तमन्ना लिए लोग सरों पर कफ़न बाँध के निकल पड़ते हैं । सरफरोशी तो होती है पर धर्म की रक्षा नहीं । क्या धर्म इतना कमज़ोर, इतना क्षणभंगुर होता है कि कोई दो शब्द कहे और वो मिट्टी में मिल जाए। धर्म न हुआ काँच का खिलौना हो गया । शीशे की अलमारी में बंद करके रखो। कोई छू देगा तो अपवित्र हो जायगा या टूटकर बिखर जायगा। धर्म न हुआ कच्ची मिट्टी का कसोरा हो गया जो पानी लगते ही घुलने लगेगा और हमेशा के लिए अदृश्य हो जाएगा। यदि आपका धर्म, आपका मत या संप्रदाय इतना ही नाजुक, इतना ही कमज़ोर और क्षणभंगुर है तो उसे टूट जाने दीजिए। ऐसा धर्म आपको क्या संभालेगा? आपकी क्या रक्षा करेगा ? जो अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता वह दूसरों की क्या रक्षा करेगा? किसी मज़बूत धर्म की शरण में चले जाइये या नये धर्म का आविष्कार कर लीजिए या बिना धर्म के ही रह जाइये लेकिन एक धर्म को मत छोड़िये और वह है मनुष्यधर्म। मनुष्यता है तो सभी धर्म हैं नहीं तो बाहरी धर्म को ढोकर ही क्या होगा ?

हम कभी धर्म की रक्षा के लिए आगे आते हैं तो कभी संतों के बचाव में आगे आते हैं पर क्या धर्म या संत इतने कमज़ोर होते हैं कि उनकी रक्षा के लिए धर्मावलंबियों या अनुयायियों अथवा शिष्यों को आगे आना पड़े। धर्म की रक्षा या स्थापना के लिए संत हैं और संतों की रक्षा के लिए धर्म है। जहाँ तक मानापमान या बेहुर्मती की बात है किसी को भी यह अधिकार नहीं कि बेवजह किसी का

अपमान करे । एक संत के अपमान का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि संत तो वही है जो मानापमान से ऊपर उठ चुका है । यदि मानापमान की बात करें तो क्या नियम पालन में ही किसी का अपमान हो गया ? कदापि नहीं । विषम परिस्थितियाँ या अपमानजनक स्थितियाँ मनुष्य को उँचा उठाने के लिए आती हैं । कहा गया है कि **असम्मानात् तपोवृद्धिः सम्मानात्तु तपः क्षयः** अर्थात् असम्मान से तपस्या में वृद्धि होती है और सम्मान से तपस्या का क्षय होता है । अपमान की अवस्था धैर्य और सहिष्णुता की परीक्षा ही तो है साथ ही अधिक धैर्य और सहिष्णुता के विकास का अवसर भी । कबीर ने भी कहा है कि **–निंदक नियरे राखिये**। कहीं निंदा या सही आलोचना के अभाव में अथवा अधिक सम्मान के कारण ही तो ये गड़बड़ नहीं हो गई ?

संत का मूल स्वभाव है क्षमा करना। बार- बार और बिना मांगे क्षमा करना । धर्म इसमें सहायक होता है । धर्म ही मानापमान सहना तथा विषम परिस्थितियों में आगे बढ़ना सिखाता है । सहिष्णुता का विकास करता है धर्म । एक कथा है सबने सुनी होगी । एक संत नदी में स्नान कर रहे थे । एक बिच्छू पानी की तेज़ धार में बहता हुआ जा रहा था। संत ने उसकी प्राणरक्षा के निमित्त उसे अपनी हथेली पर उठा लिया। जल से बाहर आते ही बिच्छू ने संत की हथेली पर डंक मारा। संत पीड़ा से तिलमिला उठे और झटके के कारण बिच्छू फिर पानी में जा गिरा और बहने लगा । दयालु संत ने बिच्छू की प्राणों के रक्षा के निमित्त पुनः उसे हथेली पर उठा लिया । बिच्छू ने फिर डंक मारा। संत बिच्छू को बचाने के उपक्रम में लगे रहे और बिच्छू उन्हे डंक मारता रहा । यह सब देखकर एक शिष्य ने पूछा 'गुरु जी जब यह कृतघ्न जीव आपको बार बार पीड़ा पहुँचा रहा है तो आप क्यों व्यर्थ इसकी प्राण-रक्षा में अपने को संकट में डाल रहे हो ? ' संत ने कहा कि वत्स अपना-अपना स्वभाव है । अपना - अपना धर्म है । जब यह अपना स्वभाव नहीं त्यागता तो मैं अपना स्वभाव क्यों त्यागूँ? बिच्छू का स्वभाव है डंक मारना और साधु का स्वभाव है क्षमा करना । उसकी ग़लती के लिए क्षमा नहीं किया जाएगा तो उसके प्राणों की रक्षा कैसे होगी ? उसके प्राणों की रक्षा नहीं होगी तो धर्म का पालन कैसे होगा ? धर्म की रक्षा बदले की भावना या हिंसा से नहीं अपितु स्वयं के त्याग और उत्सर्ग द्वारा ही संभव है । जब धर्म की रक्षा के लिए हिंसा का सहारा लिया जाता है तब धर्म की प्रासंगिकता पर ही प्रश्नचिन्ह लग जाता है । धर्मावलंबियों के आचरण से धर्म का ही मूल्यांकन हो जाता है और गुरु का मूल्यांकन करता है उसके शिष्यों का आचरण ।

**ए.डी. 106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली- 110088**

# होली का वास्तविक स्वरूप

– श्री कृष्ण गोयल ध्यानयोगाचार्य

होली शब्द का अर्थ है शुद्धता एवं परिपूर्णता, इसका एक और भी अर्थ है कि हमारे मन पर भूतकाल के किसी कर्म या घटना का कोई भी रागद्वेषात्मक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। हमारा मन सूर्य की भांति सदा परम शुद्ध, ज्ञानवर्धक तथा निरन्तर प्रगतिशील होना चाहिए, ऐसे मन को दिव्य मन कहते हैं जो परमपिता परमात्मा से सदा संयुक्त रहता है ।

भक्त प्रहलाद सात्विक मन का प्रतीक है तथा हिरण्यकश्यप एवं उसकी बहन होलिका आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं । होलिकादहन का अर्थ है कि हमें अपनी नकारात्मक प्रवृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार) को पूरी तरह भस्मीभूत करके अग्नि की भांति शुद्ध करना चाहिए जिससे वे ऊर्ध्वगामी हो जायें । इसके परिणामस्वरूप हमारे शुद्ध मन का परमात्मा के परम लोकों से सदा सम्पर्क बना रहे तथा हम ईश्वरीय प्रेरणा से दिव्य गुण, ज्ञान तथा शक्तियों को प्राप्त करके अपनी ज्ञान-शक्ति, संकल्पशक्ति तथा कर्मशक्ति द्वारा इतने अच्छे कर्म करें कि हमारे लिए किसी बुरी प्रवृत्ति को सोचने की भी स्थिति न आये । इस प्रकार हमारे भीतर एक अभूतपूर्व अद्वितीय रूपान्तरण आ जायेगा । हम ईश्वर के परमभक्त होकर अपना सर्वस्व समर्पित करके दिव्य कर्म करेंगे जिससे हमारा ही नहीं परन्तु समस्त मानवता का मंगलमयी कल्याण तथा सर्वांगीण प्रगति होगी ।

होली के उत्सव में रंग का प्रयोग अधिक होता है अत: उस पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि ऐसा क्यों है। हमारा भौतिक शरीर के अतिरिक्त सूक्ष्म तथा कारण शरीर भी है। हमारी आत्मा जो परमात्मा का अंश है, भौतिक सूक्ष्म तथा कारणशरीर के रंगों से पूरी तरह सम्बन्धित है । हमारे ऋषि-मुनियों की आन्तरिक ध्यानात्मक खोज के अनुसार आन्तरिक रंगों की संख्या दस अरब है तथा इनके अनन्त सम्मिश्रण हैं । हमारी भौतिक ज्ञानेन्द्रिय आँखें अपनी सीमा के कारण केवल सात रंगों को देख सकती हैं, तथा इन सात भौतिक रंगों के सम्मिश्रण हैं। यदि हम अपने मन को संयमित करके अपनी दृष्टि को अन्तर्गामी करके एकाग्र करें तो हमें अनन्त दिव्य रंगों का ज्ञान हो सकता है और इससे

हमारी जीवनशैली संपूर्णतः बदल सकती है एवं दिव्य हो सकती हैं । इसलिए हमें दृढ़ संकल्प एवं सतत प्रयत्न द्वारा ध्यान करना चाहिए । शुरु-शुरु में कुछ मुश्किल होगी। परन्तु हमारा दृढ़ संकल्प उस पर विजय पा लेगा,बाद में ध्यान तथा एकाग्रता हमारे जीवन का स्वाभाविक अंग बन जायेंगे । आजकल वैज्ञानिक उन्नति के कारण वैज्ञानिकों ने Intrared Rays (इन्फ्रारेड किरणें) तथा Ultra Violet Rays(अल्ट्रा वायलेट किरणें) के लेन्स (Lense) आविष्कृत कर लिये हैं जिनके द्वारा मनुष्य के आभामंडल (Aura) का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जोकि हमारे अन्तर्द्रष्टा ऋषि अपने ध्यान द्वारा देख सकते थे और उसको शुद्ध एवं संवर्धित कर सकते थे । एक बार वैज्ञानिकों ने वृक्षों, समुद्र तथा आकाश के दृश्यमान हरे, नीले तथा नीले रंगों का अध्ययन किया । बड़े आश्चर्य की बात है कि वृक्षों का रंग सफेद निकला, समुद्र तथा अकाश का रंग काला निकला । खगोल विद्या के अनुसार एक लाख कुल रंगों में सफेद रंग एक है तथा काला रंग 99999 है । सफेद रंग भौतिक शक्ति का प्रतीक है तथा काला रंग अनन्त शक्ति का प्रतीक है, इसी को वैज्ञानिक Dark Energy (काली शक्ति)कहते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि हमारी धरती भौतिक सीमित शक्ति का प्रतीक है तथा समुद्र एवं आकाश दिव्य अनन्त शक्ति के प्रतीक हैं । इसलिए भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि मैं सागर भी हूँ तथा आकाश भी हूँ । भगवान् कृष्ण का श्याम रंग उनकी दिव्यता का प्रतीक है । इस प्रकार अब हमें समस्त प्रकार के रंगों का बोध हो गया है जो कि परमात्मा की दिव्यशक्ति प्रकाश के विभिन्न रूप हैं। इसी कारण दीपक जलाने तथा सूर्य को जल देने और प्रातःकालीन सूरज के दर्शन करने की प्रथा है ताकि हम भौतिकता से दिव्यता की ओर जायें, अज्ञान से ज्ञान की ओर जायें, अन्धकार से प्रकाश की ओर जायें तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर जायें । अज्ञान के कारण हम परमात्मा से अलग हुए-हुए हैं तथा प्रतिपल नकारात्मक वृत्तियों के कारण तिल-तिल घुटकर मर रहे हैं, मानसिक मौत ही सबसे बड़ी मौत है, कारण कि हम भौतिक चेतना में रहते हैं । हमें परमात्मा की अनन्त चेतना में रहने का सतत अभ्यास करना चाहिए, जब तक ईश्वर की अनन्त चेतना हमारा सहज स्वभाव न बन जाये । उससे हमारा सम्पूर्ण शरीर (मानसिक, भावात्मक तथा भौतिक स्तर पर) दिव्य हो जायेगा जो कि परमात्मा की तरह निरन्तर प्रगतिशील एवं वृद्धिशील होगा। इससे धरती पर दिव्यता के पुष्प सम्पूर्ण सुन्दरता से विकसित होंगे, जिनकी कोमलता तथा सुगन्ध स्वर्गों में स्थित देवों और परम देवों को विमोहित करेगी । कहा जाता है सत्ययुग में देव धरती पर निवास करते थे । ऐसा अब भी

सुनिश्चित रूप से सम्पूर्णतः किया जा सकता है, यदि हम दृढ़संकल्प, श्रद्धा, समर्पण एवं सतत प्रयत्न से ऐसा करना अतिशीघ्र आरम्भ कर दें । आवश्यकता है केवल पहला कदम उठाने की, शेष परमपिता परमात्मा हमारा सब कुछ संभाल लेंगे तथा हमारा धरती माता पर भौतिक-जीवन परम दिव्य-जीवन बन जायेगा ।

होली के शुभ, पवित्र एवं मंगलमय उत्सव पर वसन्त ऋतु अपने पूरे यौवन पर होती है जो कि परमपिता परमात्मा की ओर से संकेत है कि हमें प्रेरणा लेकर अपने मन को आन्तरिक करके दृढ़निश्चय, ध्यान तथा एकाग्रता द्वारा अपनी सुप्त दिव्य शक्तियों को जागृत करना चाहिए । इसी प्रकार दिव्य शक्तियों को उद्घाटित करने पर समस्त विश्व की वर्तमान असुरता पर विजय प्राप्त की जा सकती है तथा धरती पर स्वर्ग स्थापित किया जा सकता है।

आदिकाल में हमारे ऋषि-मुनियों ने होली मनाने का यह ही लक्ष्य रखा था । हमें ऋषिमुनियों से प्रेरणा लेकर वर्तमान में जो इसमें विकृति उत्पन्न हो गई है उसको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

हमारी परमपिता परमात्मा से सच्ची प्रार्थना है कि वे हमें सदा अपने साथ संयुक्त रखें ताकि हमारे भीतर अनन्त दिव्य रंग प्रकट हों जिसके परिणाम-स्वरूप हमारी भौतिक, प्राणात्मक, भावात्मक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा दिव्य शक्तियों का समन्वय एवं संवर्धन हो। उसके परिणामस्वरूप हमारे भीतर अखण्ड परमशान्ति, आनन्द, प्रेम, सुन्दरता, कर्मकुशलता, निर्भीकता, उत्साह, विजयभावना, कोमलता, मृदुलता, हास्य तथा अनन्त दिव्य कलाओं की उत्पति हो । हमारे दिव्यजीवन से अन्य लोगों को दिव्यजीवन जीने की प्रेरणा मिले तथा एक मूक प्रगतिशील, मंगलमयी अद्वितीय क्रान्ति लाई जाये।

**307-बी, पॉकेट-2, मयूर विहार फेज-1, दिल्ली - 110091**

# हिन्दी : राष्ट्रभाषा से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की ओर

– डॉ. परमिन्द्र कौर

आज हिन्दी जनभाषा, सम्पर्कभाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा से होती हुई विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है । हिन्दी की विशिष्टता पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि हिन्दी आम–आदमी की मातृभाषा है और करोड़ों हिन्दुस्तानी हिन्दी को अपनी मातृभाषा के रूप मे स्वीकार कर गौरवान्वित अनुभव करते हैं। हिन्दी अपनी भाषिक विशेषताओं, सरलता, शाब्दिक उदारता और साहित्यिक समृद्धि के साथ भारत की भौगोलिक सीमाओं के भीतर और बाहर निरन्तर लोकप्रियता प्राप्त करती आ रही है।

प्रांतीय भाषाओं में भले अधिक श्रेष्ठ साहित्य लिखा गया हो लेकिन राष्ट्रभाषा अन्य सब भाषाओं की अपेक्षा अधिक सरलता से देश के अधिकांश भागों में समझी और सीखी जा सकती है। यहाँ तो संतों ने भी अपनी वाणी द्वारा देश की भाषा और संस्कृति को पूर्व और पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण तक पहुंचाया इसी तरह माना कि हिन्दी ने स्वयं को शताब्दियों से राष्ट्रभाषा बनाया है । हिन्दी का यह सौभाग्य रहा है कि संतों ने उसे सदा वहन किया और जनता ने उसे सदा ग्रहण किया। जिस प्रकार मध्ययुग में अनगिनत सूफी संतों के काव्यों ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की थी, उसी प्रकार विदेशों के कई विद्वानों ने भी हिन्दी भाषा, व्याकरण साहित्य तथा कोशादि ग्रंथ तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । सन् 1715 ई. में जे.जे. केटेलियर ने डच भाषा में हिन्दुस्तानी का एक व्याकरण तैयार किया। सन् 1743 ई. में इसी व्याकरण का लायडेन ने लैटिन अनुवाद किया । सन् 1882 ई. में फ्रांस में दिए गए एक भाषण में गासी–द–तासी ने हिंदुई–हिन्दुस्तानी को भारतीय लोक–भाषा कहा । सन् 1886 ई. में लंदन से प्रकाशित हाब्सन कोश में हिन्दुस्तानी को भारत की राष्ट्रभाषा कहा गया । स्पष्ट है कि विदेशों में हिन्दी भाषा और साहित्य की इस बहुमुखी सेवा का आरम्भ 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हो चुका था ।

सन् 1947 में स्वतन्त्रता के पश्चात् 1950 में जब भारत का संविधान बना । तब भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार देवनागरी लिपि में हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप मे अंगीकृत किया गया है। अनुच्छेद 351 में केन्द्रीय सरकार को हिन्दी भाषा का प्रसार,वृद्धि तथा विकास करने की शक्ति प्रदान की गई है । इस प्रकार हिन्दी को संवैधानिक

दर्जा प्राप्त है जो हिन्दी भाषा की व्यापकता व प्रभावशीलता को स्पष्ट करता है।[1] आज हिन्दी को जन–जन की भाषा का स्वरूप प्राप्त हुआ है। इसे राजभाषा का दर्जा प्राप्त होने के बाद केन्द्र सरकार के साथ ही देश के एक दर्जन प्रमुख राज्यों में सरकारी कामकाज हिन्दी में होने के कारण सरकारी योजना एवं विकास कार्यक्रम करोड़ों भारतीयों तक सीधे पहुंचने लगे हैं। हिन्दी किसी प्रदेश–विशेष, धर्म विशेष या जाति–विशेष की भाषा नहीं है। यह हिन्दीभाषा की अपनी शक्ति और सामर्थ्य है कि वह कई धर्म–संस्कृतियों की सम्पदा तथा विविध देशी–विदेशी विद्वानों की सेवा–श्रद्धा से सुशोभित एवं समृद्ध होती रही है ।

हिन्दी सरल, प्रबोध और वैज्ञानिक भाषा होने के कारण तुलनात्मक रूप में अधिक लोकप्रिय है । यह अन्य भारतीय भाषाओं के मध्य सम्पर्कभाषा होने के साथ ही विश्व–भाषाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आज हिन्दीभाषा का जनपदीय और राष्ट्रीय महत्त्व के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व भी है। विश्व के संदर्भ मे जहां तक हिन्दी भाषा का संबंध है, हिन्दी न केवल भारत की राजभाषा एवं सम्पर्क भाषा है, वरन् विश्व में बोली जाने वाली दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। टोकियो जापान विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर होजुमे सा, की दृष्टि में हिन्दी आज संसार की भाषाओं में दूसरे स्थान पर है । पहले स्थान पर चीनी भाषा है जबकि अंग्रेजी का स्थान तीसरा है । आज हिन्दी का प्रयोग लगभग 22 देशों में 80 करोड़ से भी अधिक लोगों द्वारा किया जाता है, हालांकि अभी तक वह संयुक्तराष्ट्र संघ की भाषा नही बन पायी है।'विश्वस्तर पर हिन्दी के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से 5 जून से 9 जून 2003 तक सूरीनाम के पारामिरवो शहर मे सातवां 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' आयोजित हुआ जिसमें हिन्दी की वैश्विक स्थिति पर विचार किया गया तथा कैसे हिन्दी को विश्व स्तर पर और आगे बढ़ाया जाए तथा उसे संयुक्त राष्ट्र–संघ में मान्यता दिलायी जाए, इस सम्बन्ध में कई प्रस्ताव पारित किए गए।[2]

आज विदेश के 180 विश्वविद्यालयों सहित छः सौ विद्यालयों में हिन्दी भाषा पढ़ाई जा रही है और विदेशी युवा हिन्दी सीखने में अभिरुचि प्रदर्शित कर रहे हैं।'यह भी सुखद लगता है कि हिन्दी में पहली डी.लिटु यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन के जे.सी. कारपेंटर ने की थी । जापान में पहला विद्यालय 1908 में बना था और भारतीय भाषाओं का पहला सबसे बड़ा सर्वेक्षण डॉ. ग्रियर्सन ने किया था । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को समुचित स्थान प्राप्त है । अब यह भी तय है कि आगामी दशक में जो तीन भाषाएं विश्व की पहले, दूसरे व तीसरे पायदान पर होंगी, उनमें चीनी व अंग्रेजी के अलावा हिन्दी ही रहेगी। अब बाजार में भी हिन्दी का रिश्ता जुड़ा है । प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रोनिक मीडिया दोनों में ही हिन्दी हावी है ।[3]

हिन्दी की अनेक उत्कृष्ट कालजयी कृतियों का विश्व की अन्य भाषाओं में रूपांतर का कार्य भी निरन्तर हो रहा है जिससे भारतीय

(1) अक्षरा (पत्रिका) सितम्बर–अक्टूबर, ए. 28.
(2) साहित्य अमृत (पत्रिका) जून, 2003,ए.23–31.
(3) हरिगंधा (पत्रिका) अक्टूबर, 2010, ए. 3.

सभ्यता, अध्यात्म दर्शन एवं साहित्य से संसार के अनेक निवासी सुपरिचित हो रहे हैं । भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति और भारतीय शास्त्र-विद्या के प्रति जिज्ञासा के कारण विदेशियों में हिन्दी सीखने की रुचि बढ़ती जा रही है हिन्दी की बहुत सी रचनाओं का अनुवाद रूसी में हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास, कबीर, प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर, निराला, पंत, प्रसाद, दिनकर, महादेवी वर्मा, अश्क, बच्चन आदि लोकप्रिय[4] रचनाकारों में कुछ-एक को छोड़कर सब साहित्यकारों की कृतियों का अंग्रेजी और रूसी में अनुवाद हुआ है तथा उनके विषय में शोधकार्य भी हुआ है । रवीन्द्रनाथ टैगोर की सत्तर पुस्तकों का चीनी में अनुवाद हुआ है । तुलसीदास की 'रामचरितमानस' का लगभग पचास भाषाओं में (अनेक आवृतियों में) अनुवाद प्रकाशित हुआ है । इसी प्रकार प्रेमचन्द 'निराला', जयशंकर प्रसाद, आदि की कृतियां भी अनूदित हुई हैं ।

विश्व-हिन्दी-सम्मेलनों के आयोजन से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी की सुप्रतिष्ठा निरन्तर बढ़ती जा रही है। अभी तक आठ विश्व-हिन्दी-सम्मेलनों का आयोजन विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में हो चुका है।[5] अब भारत के अतिरिक्त हिन्दी बोलने और समझने वाले लोग गयाना, सूरीनामा, ट्रिनडाड, टुबैगो, फीज़ी, मॉरीशस, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, रूस, सिंगापुर, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में मिलते हैं । विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। जहाँ तक नेपाल का सम्बन्ध है इस देश की आबादी में हिन्दी समझने व बोलने वालों की संख्या करीब 90% मानी जाती है । नार्वे में भारतीयों की संख्या सात हजार के लगभग मानी जाती है । जर्मन में भारतीय मूल के बंगाली, मलयाली एवं पंजाबी अधिक हैं । वे अब जर्मन नागरिक हैं । जर्मन विश्वविद्यालयों में इंडोलॉजी के साथ बी.ए. तथा एम.ए. में हिन्दी पाठ्यक्रम रखा गया है । रूस के हिन्दी विद्वानों ने अनुवाद के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य तो किया ही है साथ में रूस की पाठशालाओं एवं विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी अध्यापन-अध्यन की सुविधा है। इन सब देशों में अध्ययन-अध्यापन व संशोधन तथा प्रचार निरन्तर जारी है। इसके अतिरिक्त हिन्दी 'चलचित्र ने भी अपनी अहम् भूमिका हिन्दी के प्रसार में निभाई है । दूरदर्शन का 'महाभारत' ब्रिटेन में सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ है । इसी प्रकार अनेक पत्र-पत्रिकाएं भी जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित हो रही हैं ; हिन्दी का प्रचार-प्रसार करती हैं । जैसे विगत 20 वर्षों से जापान में 'सर्वोदय' एवं 'जापान' तथा 'ज्वालामुखी' पत्रिकाओं का निरन्तर प्रकाशन जारी है । इसी प्रकार आकाशवाणी भी विभिन्न देशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के कार्य में लगी है । जैसे जापान की आकाशवाणी अपने हिन्दी विभाग से प्रतिदिन 'हिन्दी' में समाचार प्रसारित करती है[6] ।

(4) विश्व में हिन्दी : हरि बाबू कंसल, खं 31, ए.144. (5) विकल्प(पत्रिका) 2009, ए.27.
(6) विकल्प(पत्रिका) जनवरी-मार्च, ए.3.

डॉ. परमिन्द्र कौर

आज का युग इन्टरनेट का युग है सारा विश्व इन्टरनेट के कारण एक कम्प्यूटर में समाया हुआ है । अब इन्टरनेट पर हिन्दी भाषा का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है अनेक हिन्दी इन्टरनेट वेबसाईट हिन्दीप्रसारण को गति दे रहे हैं। डॉ. विजय काम्बले ने भारतीय भाषाओं में कम्प्युटर और विश्वजाल आलेख में लिखा है कि 'माइक्रोसाफ्ट' 'याहू' 'रेडिफ' 'जीमेल' आदि विदेशी कम्पनियां अपनी वेबसाइट सूचना प्रौद्योगिकी ई-कॉमर्स, ई-गर्वनेस क्षेत्र में हिन्दी का विकास कर रही हैं। आज हिन्दी भाषा ने प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र गति से विकास किया है । भारतीय हिन्दी बाज़ार की लोकप्रियता देखकर अनेक हिन्दी चैनलों का प्रसारण हिन्दी में होने लगा है । अमेरिका का निकेलडन टी.बी. अंग्रेजी में न चल सका, लेकिन जब इसे निक टी.बी. करके हिन्दी में प्रसारित करना शुरू किया तो यह चल निकला। 'टर्नर' इंटरनेशनल ने हिन्दी की लोकप्रियता से प्रभावित होकर चैनल 'पोगो' आरम्भ किया, जिसे लोगों की भारी पसंद मिली है । अब 'डिस्कवरी' व 'ज्योग्राफी' चैनल भी डब की गई हिन्दी में प्रसारित होने के कारण लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं। विदेशी चैनलों के हिन्दी प्रसारण के व्यापार ने नए द्वार खोले हैं और विज्ञापन-जगत् के कारोबार को बढावा मिला है।

आज हिन्दी केवल साहित्य-रचना का माध्यम ही नहीं है वरन् बाजार, विपणन एवं वाणिज्य मीडिया, जनसंचार, विज्ञापन, फिल्म-शोध और अनुसंधान एवं प्रबंधन आदि कई क्षेत्रों में अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है । बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादन की बिक्री आज हिन्दी के विज्ञापनों की सम्प्रेषणीयता पर अवलम्बित है। विश्व में हिन्दी-प्रयोग की दशा उत्तम है और सही दिशा में प्रयास के कारण इसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। आज देश के छोटे-बड़े औद्योगिक घराने और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी अपने विज्ञापनों को जारी करना आवश्यक समझ रही हैं। नई वैश्विक आर्थिक, नई जनसंचार शक्तियां हिन्दी-जगत् से जुड़ीं तभी साथ में दक्षिण एशिया में भी अपना स्थान बनाना शुरू कर दिया जिससे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्भावनाओं का द्वार तो खुला ही, साथ में हिन्दी की निरन्तर प्रगतिशीलता की सम्भावनाएं भी बढ़ी। आज हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने की ओर अग्रसर है। भारत सरकार भी हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने में प्रतिबद्ध है।[7] ऐसा ज्ञात होता है कि देर-सवेर हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान मिल ही जाएगा क्योंकि विश्व में हिन्दी बोलने वालों की संख्या बहुत बड़ी मात्रा में है।

**बी.ए.एम. खालसा कॉलेज, गढ़शंकर ( होशियारपुर )**

---

(7) राष्ट्रभाषा ( पत्रिका) सितम्बर, अक्टूबर, 2007

# राग के दुष्परिणाम

—श्री मनमोहन आर्य

योगदर्शन में राग को क्लेश के अन्तर्गत माना गया है जो योगाभ्यास व ईश्वरप्राप्ति में बाधक है। राग का उल्लेख कर महर्षि पतंजलि ने कहा है कि **सुखानुशयी रागः**। इसकी व्याख्या करते हुए दर्शनों के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य उदयवीर शास्त्री कहते हैं कि सुख का अनुशयन वा अनुसरण करने वाला क्लेश, राग कहलाता है। वह लिखते हैं कि जब व्यक्ति सांसारिक-विषयों में सुख-अनुकूलता का अनुभव कर उससे परिचित हो जाता है, तब पुनः पुनः उनका स्मरण होता रहता है। व्यक्ति उनको याद करता हुआ चाहता है कि उन विषयों को फिर भोगूं और सुख को प्राप्त करूं। पहले भोगे सुख को याद करते हुए वैसे सुख और उसके साधनों में व्यक्ति को जो एक तृष्णा, उन्हें प्राप्त करने की उत्कट भावना-उत्पन्न होती है, उन विषयों की ओर जो एक गहरा रूझान होना है, वह 'राग' नामक क्लेश है। तात्पर्य है कि सुख देनेवाले लुभावने विषयों की ओर तीव्र रुचि व आकर्षण का होना राग है। जब तक एक बार विषयजन्य सुख का अनुभव नहीं होता, तब तक ऐसी भावना के उभरने की सम्भावना नहीं रहती। इसलिए राग, सुख का अनुसरण करने वाला व पीछे-पीछे चलने वाला होता है।

राग एवं द्वेष मन के ऐसे गुण व अवस्थायें, संस्कार से उत्पन्न स्मृतियां व प्रवृत्तियां हैं जिन्हें प्रत्येक मनुष्य को नियंत्रित करना होता है अन्यथा इनके परिणाम अच्छे नहीं हुआ करते। राग में क्या होता है कि मनुष्य जिन वस्तुओं के सम्पर्क में होता है वह उसे अच्छी लगने लगती हैं,उनका संस्कार बन जाता है। जितना अधिक वह उसके सम्पर्क में होगा या उसका प्रयोग करेगा वह बढ़ता जायेगा और फिर यदि वह उसे छोड़ना चाहे तो उसे कठिनता होती है। उदाहरण के लिए एक युवा व्यक्ति चाय का सेवन नहीं करता। उसके मित्र उसे आग्रह कर चाय पिला देते हैं। कुछ अवसर और आ जाते हैं जिस में उसे चाय का सेवन करना पड़ता है, तो यह उस पर चाय के संस्कार पड़ने का आरम्भ है। यदि वह यदा-कदा चाय पीता रहेगा तो धीरे-धीरे चाय का संस्कार उस पर दृढ़ होता जायेगा अर्थात् उसे चाय पीने की आदत पड़ जायेगी। फिर यदि वह छोड़ना चाहेगा तो उसे कठिनाई होगी। हम स्वयं का ही उदाहरण लेते हैं कि हम चाय का सेवन करते हैं। जब चाय पीने का समय होता है तो हमारा ध्यान वहां जाता है। यदि उस समय चाय न मिले तो इच्छा होती है कि चाय की प्राप्ति हो। न मिलने पर ध्यान उसी तरफ लगा

रहता है एवं हम जो कार्य कर रहे होते हैं उसमें मन पूरी तरह से लगता नहीं है। **यह एक प्रकार से चाय के प्रति राग का होना है।** इसके लिए तो अच्छा यही होता है कि चाय का सेवन किया ही न जाये । अब यदि इसे छोड़ना है तो इसके लिए मन में दृढ़ता की भावना लानी होगी । इस पर कई बार कठिनाईयां आती हैं । बहुत कम लोग उस प्रकार के कार्यों जिन के प्रति राग होता है, उन्हें छोड़ पाते हैं, अधिकांश नहीं छोड़ पाते । कई बार ऐसा भी होता है कि किसी मनुष्य के प्रति राग हो गया । वह व्यक्ति किसी कारण बिछुड़ जाता है या उसका वियोग हो जाता है तो हर समय उसकी याद बनी रहती है । बार-बार उसी ओर ध्यान जाता है व अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। जीवन ठहर सा जाता है। विचारों, मन व ध्यान में वह राग वाली वस्तु ही छायी रहती है । मन को लाख समझाने पर भी उससे जुड़ी स्मृतियां स्मृत होने का नाम ही नहीं लेती हैं । ऐसी अवस्था में एवं कुछ परिस्थितियों में मन में नाना प्रकार के बुरे विचार आ जाते हैं । कई लोग तो आत्महत्या तक के बारे में सोचते हैं । कुछ मामलों में लोग आत्महत्या का प्रयास भी करते हैं । अतः समस्या है कि राग को काबू या नियंत्रित किस प्रकार किया जाये ? इसका एक उपाय तो यह है कि पहले से ही राग व द्वेष के वास्तविक स्वरूप को जाना व समझा जाये। **मनुष्य के जीवन से कोई भी मूल्यवान् वस्तु संसार में नहीं है**, इसको समझना चाहिये और जब भी राग के कारण बिछुड़ी वस्तु की ओर ध्यान जाये तो बुरे विचारों को अपने भविष्य का ध्यान करते हुए उन विचारों व भावनाओं वा ध्यान की दिशा बदल कर अन्य विषयों का ध्यान व चिन्तन करना चाहिये। यदि राग का कारण किसी अपने प्रियजन का वियोग है व राग का स्तर बहुत उच्च श्रेणी का है तो व्यक्ति को अकेला न होकर परिवार के सदस्यों के साथ होना चाहिये। दूसरा उपाय है कि यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि उस विचार को आने ही नहीं देना है और अगर आये तो उसे बलपूर्वक हटा देना है । इसके अतिरिक्त राग वाली वस्तु में जो खामियां व बुराईयां आदि थीं उन्हें खोज कर उससे सन्तुष्ट होना चाहिये कि उन मुसीबतों से वह बच गया है । राग तभी होता है जब हमारी सभी इन्द्रियां हमारे वश में न हों व हममें ज्ञान एवं विवेक न हो । हमें देखना चाहिए हमारी किसी इन्द्रिय ने कोई चंचलता की थी जिसका परिणाम वह दुःख है । **मन व इन्द्रियों को वश में करने का सबसे अच्छा उपाय प्राणायाम है। दूसरा उपाय ईश्वरोपासना अर्थात् सर्वव्यापक ईश्वर के पास बैठ कर उसकी स्तुति एवं प्रार्थना को करना है। यदि हम ओ३म् या गायत्री मन्त्र का ज्ञानपूर्वक जप करते हैं तो यह भी राग के दुष्परिणामों से बचने में प्रबल सहायक है।**

राग एक प्रकार की प्रवृत्ति व गुण है । राग को सद्गुण तो नहीं कहा जा सकता किन्तु क्लेश में परिगणित होने से यह दुर्गुण की श्रेणी का होता है । मनुष्य की प्राणियों के प्रति जो अपनी-अपनी पसन्द होती है, उसके अनुसार इस राग की स्थिति उनमें भिन्न-भिन्न होती है । जिस वस्तु या व्यक्ति के प्रति राग होता है उसे

प्राप्त करने व उसे अपने पास रखने की व्यक्ति की इच्छा होती है । यदि खाने-पीने की वस्तुओं के प्रति राग पर विचार करें तो किसी को खीर पसन्द है तो वह चाहता है कि उसे भोजन में प्रचुर मात्रा में खीर प्राप्त हो। मांसाहारी, शराबी, अण्डे का सेवन करने वाला या धूम्रपान करने वाला इन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है और यदि यह प्राप्त न हो तो उसे क्लेश होता है । माता-पिता का अपनी सन्तानों में जो मोह या ममता है वह भी राग की श्रेणी में आता है । किसी भी माता-पिता की सन्तान को यदि कोई रोग या अन्य प्रकार से मानसिक कष्ट होता है तो माता-पिता को उससे दुःख होता है और जब सन्तान का कष्ट दूर हो जाता है तो माता-पिता का दुःख भी दूर हो जाता है। बहुत से व्यक्तियों का धन में राग होता है । वह धर्म के कार्यों व अपने भोजन व अन्य आवश्यक कार्यों में भी आवश्यक व्यय न करके धन बचाते हैं और यदि किसी प्रकार से धन व्यय करना पड़े तो उन्हें बहुत दुःख होता है । इस प्रकार किसी व्यक्ति, स्त्री, पुरुष, युवा, युवती, वृद्ध व वृद्धा का यदि किसी भी वस्तु आदि में राग है तो उसके छिन जाने, वियोग होने व प्राप्त न होने पर वह दुःखी हो जाता है और फिर उसे उसके न मिलने पर काफी समय तक दुःख में रहने पर धीरे-धीरे उसको भुला पाता है जिससे उनका राग का दुःख व क्लेश दूर होता है ।

राग के बारे में यह भी महत्वपूर्ण है कि हमारे देश में बाल्यकाल में जो शिक्षा दी जाती है उसमें नैतिक व धार्मिक तथा मानसिक विकास से सम्बन्धित विषयों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये परन्तु आज शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ व बुद्धिजीवी ऐसा उचित नहीं समझते जिसके पीछे कारण चाहे कुछ भी हो। यदि बचपन से ही जीवन से जुड़े प्रमुख विषयों को शिक्षा में सम्मिलित कर लिया जाये तो बच्चे भावी जीवन में विपरीत परिस्थितियों के आने पर सही निर्णय कर सकते हैं ।

राग के अन्तर्गत हम ऐसे लोगों को भी सम्मिलित कर सकते हैं जो बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षायें रखते हैं । किसी ने अधिक धन कमाना जीने का उद्देश्य बना रखा है तो किसी ने विदेश में ज़ाकर बसने का। किसी ने बहुत भव्य व सुन्दर आवास बनाने का स्वप्न देखा है तो किसी ने किसी बड़े पद की चाहत कर रखी है। अब विचार करने वाली बात यह है कि सभी लोगों के बहुत बड़े स्वप्न व ख्वाब तो पूरे नहीं होते। कुछ के हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में जिनके स्वप्न पूरे नहीं हुए हैं वह लोग इच्छा की पूर्ति न होने के कारण दुःखी व विषाद से भरे हुए होते हैं । उनके पास जितना धन व साधन होते हैं उसका भी वह आनंद नहीं ले पाते । दूसरी ओर ऐसे लोग होते हैं जो जीवन की सत्यता को जानते समझते हैं । वह बड़ी महत्वाकांक्षायें रखते ही नहीं उन्हें जो भी प्राप्त है उसका वह भरपूर आनंद लेते हैं । ऐसे लोगों के पास प्रायः समय भी पर्याप्त होता है। वह जीवन में छोटे-छोटे कार्यों के सम्पन्न होने पर प्रसन्न होते हैं तथा अपने सुख के क्षणों में सामूहिक यज्ञ व पारिवारिक उत्सव आयोजित

कर अपने परिचितों व मित्रों को भी सम्मिलित करते हैं । सन्तोष उनके जीवन का मंत्र होता है। वह सभी से प्रसन्नतापूर्वक घुले-मिले रहते हैं, सबको समय देते हैं, बातें करते हैं । अपने परिचित लोगों के सुख-दुख के अवसरों पर उनसे मिलते रहते हैं । **समय पर सोते हैं, समय पर उठते हैं, शौच व स्वाध्याय, ध्यान व चिन्तन, ईश्वरोपासना व अग्निहोत्र, अपने व्यवसाय के कार्य व दूसरों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार, शाकाहारी स्वास्थ्यवर्धक भोजन, माता-पिता-आचार्य-गुरुजन-विज्ञ -संन्यासियों व वृद्धों की सामर्थ्यानुसार सेवा आदि कार्य प्रसन्नतापूर्वक करते हैं। ऐसे लोगों का जीवन सुखद व आनन्दित होता है। यह अनुकरणीय जीवन होता है। सुखी जीवन के लिए बहुत रूपयों की आवश्यकता नहीं होती, अपितु कई बार अधिक धन सुख में बाधक हो सकता है । बात केवल जीवन को जीने के तरीके का आना होता है । जिसको यह आता है वह बड़े-बड़े धनपतियों से अधिक सुखी व आनन्दित होते हैं । अतः प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने की कला सीखनी चाहिये।**

राग का अर्थ सुखों में अनुरक्ति है । इसके विपरीत अर्थ वाला शब्द वैराग्य है । वैराग्य का अर्थ है सुखों के वास्तविक स्वरूप को जानकर उनकी इच्छा न करना व जिन वस्तुओं से सुख होता है उनसे स्वयं को पृथक् रखना वैराग्य है । हमारा जिन वस्तुओं व प्राणियों से राग होता है, वह सब और हम मरणधर्मा हैं । **हमारा व उन सभी वस्तुओं का वियोग होना निश्चित व सत्य है ।** जो वस्तु या प्राणी का कालान्तर में हमसे पृथक् होना है, उससे प्राप्त होने वाला सुख अस्थाई ही है और वियोग के अवसरों पर वह दुःख का कारण होता है। अतः राग को कम करके व समाप्त करने का प्रयास कर वैराग्य को जीवन का साथी बनाना चाहिये जिससे जीवन में दुःख कम से कम या न के बराबर हो। यदि हम इस जीवन में ईश्वर का साक्षात्कार व मुक्ति को जीवन का लक्ष्य बनाते हैं तो हमें राग पर पूर्ण विजय या नियंत्रण प्राप्त करना होगा । ऐसा किए बिना ईश्वर साक्षात्कार एवं मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता ।

**261/196, चुक्खूवाला- 2, देहरादून - 248001**

# गीता में कर्म-प्रबन्धन

-डा. रीना तलवाड़

व्यक्ति के जीवन के मूलमंत्र के रूप में कर्म अपनी भूमिका निभाता है। भारतीय संस्कृति की नींव कर्म से सम्पन्न होकर सुदृढ़ बनी है। कर्म का समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता से सीधा सरोकार है। मनुष्यजीवन में यह आधार जितना सुदृढ़ होगा, जीवन-भवन उतना ही परिष्कृत होगा। कर्म अन्तस् के संघर्ष से मुक्ति का ज्ञान है। अपने अन्दर के कृष्ण को जगाने और दुर्योधन को समूल समाप्त करने का प्रण कर्म की विजय है। आज की युवा पीढ़ी में अपने कर्म के प्रति प्रतिबद्धता की कमी है। निराशा एवं तनाव के गहन अंधकार में डूब रहे मानव को लगता है कि उसके जीवन का कोई लाभ नहीं। गीता में कर्म-ज्ञान को जितनी गहराई से जानेंगे, धर्म-पथ पर आरूढ़ व्यक्तित्व उतना ही निखरता जाएगा। यह ज्ञान-धारा मनुष्य को डुबोती नहीं, अनासक्त नहीं करती अपितु जूझने का आधार बनती है, समाज के लिए आस्था का सम्बल बनती है। श्रीमद्भगवद्गीता आधुनिक युवावर्ग के लिए सबसे बड़ा प्रेरणास्रोत है।

21वीं शताब्दी में सूचना प्रौद्योगिकी की महत्त्वपूर्ण कड़ी ज्ञान एवं कर्म-प्रबन्धन का प्रथम पाठ गीता के गम्भीर अध्ययन से ग्रहण किया जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता विश्व-धर्म का पर्याय है। इसमें प्रतिपादित सारे विषय-आत्मा की नित्यता, स्थितप्रज्ञ-लक्षण, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, विषयों का त्रैगुण्य एवं परमसत्ता की विराटता समस्त विश्व-मानवता के लिए है, न कि केवलमात्र भारतीयों के लिए। गीता की धर्मदेशनायें भारतीय, अभारतीय सबके लिए उपादेय हैं।

इसलिए कहा गया है कि श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ने के बाद अन्य किसी ग्रन्थ के पढ़ने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं। आज सम्पूर्ण विश्व में आतंकवाद का जो नग्न ताण्डव व्याप्त है, उसका एकमात्र कारण है, उस राह पर चलने वालों की अनात्मदृष्टि। वे यह अनुभव ही नहीं कर पा रहे हैं कि जो चैतन्य(आत्मा) उनके शरीरों में विद्यमान है, वहीं उन लोगों के भी शरीरों में भी है, जिन्हें वे अपना शत्रु मानकर मार रहे हैं। अपने तथा परायों में समान चैतन्य का अनुभव करने वाले के लिए भला कोई 'शत्रु' हो सकता है ?

समदर्शिता सुख का मूल है-

समदर्शिता तभी आयेगी जब व्यक्ति सात्विक-भावना से युक्त होगा। यद्यपि सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण सभी युगों में

रहते हैं। पर गीता आदर्श स्थिति उसे मानती है जब रजोगुण और तमोगुण पर सत्वगुण की बढ़त हो। यह स्थिति सम्पूर्ण मान- जाति की सामूहिक सोच और निश्चयानुसार कर्म करने से ही सम्भव है। गीता आज़ के युग और जीवन को सत्वगुण प्रधान बनाने का संदेश दे रही है:- 'सत्त्वं सुखे सञ्जयति।' कर्म करते हुए मुक्त संग होकर कुशलता के साथ जो कुछ किया जाये उसे ब्रह्मार्पण की बुद्धि से करना चाहिए।

कर्म करना मनुष्य का अधिकार है। उसके पास जो गुण और कर्मशक्ति है उसके अनुसार उसे अपने देश, समाज और विश्व की सेवा करनी चाहिए। यही उसका कर्म है । जब इस प्रकार के कर्म करता हुआ वह जीवन में बढ़ता जायेगा तो अधिकार उसको वैसे ही मिलता जायेगा। कर्म अधिकार की जननी है, नकि अधिकार कर्म की बस यहि गीता सिखाती है। क्योंकि गीता एक-मात्र ग्रन्थ है, जो साभार पझनाभ विष्णुरूप भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकला है अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं ही अर्जुन को सुनाया है। यद्यपि भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ करने वाले उसकी परम्परा को बनाए रखने वाले, व्यक्ति के कर्तव्य और अधिकार की वास्तविकता बताने वाले अन्य भी ग्रन्थ भारतीय साहित्य के अगाध भण्डार में विद्यमान हैं पर सर्व-जन-हिताय भावनामात्र का पथप्रदर्शक गीता जैसा ग्रन्थ अन्य हो ऐसा सम्भव नहीं। विशेषकर आज के इस युग में जब कि व्यक्ति केवल अधिकार की ओर तो मुंह फैलाए हुए है किन्तु कर्तव्य मार्ग पर वह तनिक नहीं चलना चाहता। आज गीता के पठन-पाठन से भारतीय लोगों में कर्मठता, जिजीविषा, उत्साह और जिज्ञासा होगी। कर्म करने के लिए उनमें प्रवृत्ति होगी और उसके लिए उनमें अहंकार का त्याग और लोकोपकारी दृष्टिकोण की भावना जागृत होगी ।

गीता ने ही निष्काम कर्म को ही शाश्वत सत्य धर्म के रूप में व्यवहार में लाने का सुन्दर उपदेश किया है। फल और आसक्ति से कर्म करने का नाम निष्काम कर्म है। मनुष्य व्यर्थ में ही प्राप्त वस्तु में ममता व अप्राप्त वस्तुओं में कामना करने लगता है। पदार्थों को अनुचित महत्त्व देना महान् भूल है। कामना से पदार्थ नहीं मिलते। वास्तव में कर्मों में प्रवृत्ति कामना की निवृत्ति के लिए ही है, कामना की पूर्ति के लिए नहीं। कर्मों को भगवान् के अर्पण करना ही सर्वश्रेष्ठ है।

वास्तव में कर्मयोग से तात्पर्य है फल के प्रति आसक्ति का त्याग। सकाम व्यक्ति की दृष्टि सदा 'फल' की ओर होती है, निष्काम व्यक्ति की दृष्टि सदा 'कर्म' की तरफ रहती है। क्योंकि केवल कर्म करना ही हमारे हाथ में होता है, फल हमारे हाथ में होता ही नहीं।

अत: आज की युवा पीढ़ी के लिए गीता का संदेश कर्मयोग उपादेय है। सभी साधकों को प्रमाद छोड़कर गीता का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि यह ग्रन्थ हमारे युग में, जीवन में तथा विचारों में क्रान्ति ला सकता है। जीवन को सुखद तथा उन्नत बना सकता है।

**संस्कृत विभाग, शान्ति देवी आर्य महिला महाविद्यालय, दीनानगर।**

# पातञ्जलयोगोक्त परिकर्म-परिशीलन

-डॉ. सुधांशु कुमार षडङ्गी

त्रिविध दुःखपीड़ित प्राणिमय संसार में आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति हेतु योगक्त मार्ग को श्रेष्ठ कहा गया है। यह योग पुरुष के आत्यन्तिक स्वरूपावस्थान में हेतुभूत चित्तवृतियों के निरोधरूप ही है।[१] योग अधिकारी के भेद से तीन प्रकार का है। जैसे - उत्तम अधिकारी- जो योगारुढ़ संज्ञक है। मध्यम अधिकारी-जो युञ्जान संज्ञक है । अधम अधिकारी- जो आरुरुक्षु संज्ञक है । इनके लिए अभ्यास और वैराग्य[२], क्रियायोग[३] तथा अष्टाङ्गयोग[४] का निर्देश योगसूत्र में दिया गया है। यद्यपि उत्तम अधिकारी के लिए ईश्वरप्रणिधानरूप वैकल्पिक योगसाधनोपाय का विधान भी किया गया है, तथापि अभ्यास और वैराग्य की महत्ता स्वीकृत की गई है। इन दोनों में से दृष्ट पदार्थों के प्रति एवं स्वर्गादि विषयों के प्रति वितृष्णा के साथ-साथ इन सभी विषयों के प्रति जो अनाभोगात्मिका प्रवृत्ति होती है वह वैराग्य है और चित्त की स्थिरता के लिए किया गया प्रयत्न विशेष अभ्यास कहलाता है। वस्तुतः प्रारम्भिक अवस्था में चित्त-एकाग्रता की अवस्था में ध्येयाकाराकारित रहने पर भी विक्षिप्तता के कारण ध्येय से अतिरिक्त विषयों में चित्त का सञ्चरण होता रहता है। इन बाह्यविषयों से हटाकर चित्त को बारम्बार ध्येय में ही लगाने को यत्न कहा गया है और यहाँ पर इस स्थिति को सम्पादित करने की इच्छा से उसके साधनों का जो अनुष्ठान होता है, उसे अभ्यास कहा जाता है। इस अभ्यास के अन्तरङ्गसाधन के रूप में परिकर्मों का ग्रहण किया जाता है। परिकर्माङ्ग ही इस शोधलेख का प्रतिपाद्य विषय है। इसमें परिकर्मों का स्वरूप तथा भेदादि का निरपेक्ष निर्वचन किया जाएगा।

अर्थ चित्त को त्रिविध मलों से परिष्कार करने वाले कर्मविशेष को परिकर्म कहा जाता है। अतः भास्वतीकार ने कहा है-

**उक्तस्य चित्तस्य योगशास्त्रेण स्थित्यर्थं यदिदं परिकर्मपरिष्कृतिनिर्दिश्यते.....।**[६]

श्री विज्ञानभिक्षु के मत में भी परिकर्म

(१) यो०सू०, १/२/३
(२) वही, १/१२
(३) वही, २/१
(४) वही, २/२९
(५) वही, १/२३
(६) भा०, १/३३

चित्त की शुद्धि में तात्पर्य रखता है और यही परिकर्म चित्तस्थैर्य में प्रमुख उपाय है। अमरकोष में इसकी पुष्टि होती है।[७] इसके स्पष्टीकरण में सुधा व्याख्या में कहा गया है कि–
**पेति परि मलवर्जनार्था क्रिया परिकर्म स्नानोद्वर्त्तनादिः 'प्रतिकर्म इति क्वचित्पाठः' अङ्गं संस्क्रियतेऽनेन।[८] तथा प्रतिकर्म प्रसाधनम्[९]।**
यहाँ पर कहीं-कहीं प्रतिकर्म के रूप से स्वीकृत है। सुधा व्याख्या में कहा गया है कि– **प्रत्यङ्गं प्रतिख्यातं वा कर्म।**

**शाकपार्थिवादिः। प्रसाध्यतेऽनेनाङ्गम्। करणे ल्यूट्।**[१०]
इसकें छे भेद किए गए हैं :-
1) **चित्तप्रसाद** – चित्तप्रसाद का सीधा अर्थ है, चित्त का प्रसन्न होना। प्रसादस्तु प्रसन्नता योग के संदर्भ में इसका अर्थ होगा विषयों की कलुषता से शून्य होना। इस चित्तप्रसाद के दो उपाय बताए गये हैं। जैसे– सुखादि अनुभव प्राप्त वालों में मैत्री आदि की भावना तथा प्राणायाम । इन दोनों में से प्रथम उपाय के स्पष्टीकरण में सूत्रकार पतञ्जलि ने कहा है कि– वीतयोगी को चित्त की निर्मलता के लिए सुखी और दु:खी पुण्यात्मा तथा अपुण्यात्मा पुरुषों के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने चित्त निर्मल होता है।[११] तात्पर्य है कि इस लौकिक संसार में सुखी, दु:खी, अच्छा, बुरा आदि हर तरह के प्राणी होते हैं। इन व्यक्तियों का अपने स्वभाव के अनुकूल राग, द्वेष आदि चित्त में उत्पन्न होता है। जिसके कारण लोभ, क्रोध आदि भाव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार लोभ, क्रोध आदि स्वभाव वाले अपरिष्कृत चित्त को समाधि तथा उसका साधनभूत यौगिक सामर्थ्य प्राप्त नहीं होता है। अतः इसके निवारणहेतु इन भावादि के प्रतिपक्षों की भावना का विधान बताया गया है। जैसे–सुख का आनन्दपूर्वक भोग करने वाले प्राणियों के प्रति मैत्री की भावना करनी चाहिए। दु:खी प्राणियों के प्रति करुणा का प्रदर्शन करना चाहिए। पुण्यशील प्राणियों के प्रति मुदिता तथा पापी प्राणियों के प्रति उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करने पर साधक का सात्त्विक धर्म उदय होता है। जिसके कारण चित्त प्रसन्नता को प्राप्त करता है और प्रसन्न हुआ चित्त स्थिति पद को प्राप्त करता है।[१२]

चित्तप्रसाद का द्वितीय उपाय प्राणायाम है। महर्षि पतञ्जलि ने भी लिखा है कि प्राणों के रेचन तथा कुम्भक से मन स्थिर होता है।[१३] रेचन को ही प्रच्छादन कहते हैं जिसका अर्थ है प्राणवायु का शरीर के अन्दर से किसी एक नासापुट से प्रयत्नविशेष के साथ बाहर करना

(७) अमर० २/६/१२१
(८) सुधा० २/६/१२१
(७) अमर० २/६/९९
(१०) सुधा० २/६/९९
(११) यो०सू०, १/३३
(१२) यो०वा०, १/३३
(१३) यो०सू०, १/३४

तथा विधारण से तात्पर्य है उस प्राणवायु को संयत करके रखना। इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्री विज्ञानभिक्षु के अनुसार प्रच्छर्दन रेचन तथा विधारण कुम्भक है। क्योंकि पूरण क्रिया के पश्चात् कुम्भक क्रिया होती है और भी रेचन क्रिया के अनन्तर पूरक किये बिना ही प्राणवायु की विधारण क्रिया भी सम्भव नहीं हो सकती है।[१४] किन्तु स्मृतिशास्त्रों में रेचक, पूरक और कुम्भक तीन प्रकार के प्राणायाम स्वीकृत हैं।[१५]

ऐसी स्थिति में प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब अधम अधिकारी के लिए उद्दिष्ट साधनों में से प्राणायाम का निर्वचन किया गया है, तो फिर इसमें क्यों किया गया है? उसका समाधान करते हुए कहा गया है कि समाहित चित्त वाले उत्तम अधिकारी के योगसाधन के रूप से यमादिनिरपेक्ष प्राणायाम ही उपदिष्ट हुआ है और यमादि अष्टाङ्गों में वर्णित प्राणायाम अधम अधिकारी के लिए उपदिष्ट है। यही इनमें भेद है। उत्तम अधिकारी केवल दो प्रकार के प्राणायाम से ही रागादि मलों के प्रक्षालनपूर्वक चित्त को स्थिर कर सकते हैं। अत: दोनों विधियाँ निर्दोष हैं।

2) **विषयवती प्रवृत्ति–** विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध आदि तन्मात्ररूप है। योग के स्वल्प अभ्यास से ही इन विषयों का साक्षात्कार करने वाली वृत्ति विषयवती प्रवृत्ति कहलाती है अर्थात् चित्त का जो साक्षात्कार होता है, उसके दिव्य गन्धादि पाँच विषयत्व के रूप से होते हैं। अत: इसे विषयवती प्रवृत्ति कहा जाता है। अत: श्रीविज्ञानभिक्षु जी ने वार्त्तिक में कहा है कि:–

**विषया: गन्धादय: पञ्चविषयत्वेनास्य सन्तीति।**[१६]

यह विषयवती प्रवृत्ति अपने अविषयीभूत विवेकपर्यन्त पदार्थों में भी श्रद्धादि को उत्पन्न करने में बाधक न होने के कारण स्थिति सम्पादिका रसप्रवृत्ति, रूपप्रवृत्ति, स्पर्शप्रवृत्ति और शब्दप्रवृत्ति है। ये सब योगशास्त्रानुमोदित पारिभाषिक शब्दस्वरूप है। इनमें से नासिकाग्र में धारणा करने वाले योगी को स्वल्प काल में ही जो दिव्य गन्ध का साक्षात्कार होता है, उसे गन्धप्रवृत्ति कहते हैं। उसी प्रकार जिह्वाग्र में धारणा करने वाले योगी को स्वल्प अवधि में ही जो दिव्य रस का साक्षात्कार होता है उसे रसप्रवृत्ति कहा जाता है। तालु में धारणा करने वाले योगी को स्वल्प काल में ही साक्षात्कार होता है उसे रूपप्रवृति कहते हैं। जिह्वा के मध्य में धारणा करने से योगी को अत्यल्प काल में ही जो दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार होता है उसे स्पर्शप्रवृत्ति कहते हैं और जिह्वामूल में धारणा करने से योगी को स्वल्प अभ्यास से ही जो शब्द का साक्षात्कार होता है उसे शब्दप्रवृत्ति कहते हैं।

वस्तुत: यहाँ पर धारणादि योगानुष्ठान के

(१४) वही, १/३४ (१५) याज्ञ०, ६/२ (१६) यो०वा०, १/३५।

स्थान के विषय में शङ्का उत्पन्न होती है। क्योंकि दर्शनान्तरों में रूपादिविषयों के साक्षात्कार का स्थान उपर्युक्त निर्दिष्ट स्थानों से भिन्न रूप से प्रतिपादित है। पुनः चाहे व्यास हो अथवा वार्त्तिककार श्रीविज्ञानभिक्षु हो, दोनों ही तत्तत्स्थानों का निर्देश करने के पश्चात् शास्त्रप्रमाण से निश्चय करने के लिए कहा है।

इस विषय पर हरिहरानन्द आरण्यक जी इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं कि "तालु के ऊपर ही आक्षिक स्नायु है। जिह्वा में स्पर्शज्ञान का अधिक प्रस्फुट भाव है और जिह्वामूल वाक्योच्चारण के सम्बन्ध से कान के साथ सम्बन्ध है। अतः इन स्थानों पर धारणा करने से ज्ञानेन्द्रिय की सूक्ष्मशक्ति प्रकट होती है। चन्द्रादि को स्थिर नेत्र से निरीक्षण कर नेत्र मुद्रित करने पर भी यथावत् उनके रूपों का ज्ञान होता रहता है। उन्हीं का ध्यान करते-करते उन्ही रूपों से सम्बन्धित प्रवृतियाँ उत्पन्नीं होती हैं। ये भी विषयवती हैं, क्योंकि ये रूपादि के अन्तर्गत है।[१७]

इन गन्धादि प्रवृत्तियों का विवेकज्ञान पर्यन्त योग की भूमियों में अतिशय श्रद्धा द्वारा चित्तस्थैर्य में कारण के रूप से स्वीकृत है। इनमें से स्थैर्यसंस्कार के द्वारा किसी एक शास्त्रीय पदार्थ की भी साक्षात्कार हो जाने पर अन्य प्रवृत्तियों का भी सिद्धि स्वतः हो जाती है। इस प्रकार श्रद्धातिशय प्राप्त होने पर स्थैर्यसंस्कार से चित्त का स्थिर हो जाना युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है।

**3) विशोका या ज्योतिष्मती–** यह अभ्यास के तृतीय परिकर्माङ्ग है। यह दुःखरहित प्रकाशरूपक ज्योतिष्मती नामक परिकर्म है। इसके कारण चित्त स्थिति पद को प्राप्त करता है। क्योंकि इसमें से शोक चला गया है अतः यह विशोका है।[१८] यह हेतुगर्भ-विशेषणभूत पद है।[१९] शोकरहित होने के कारण यह ज्योतिष्मती प्रवृत्ति चित्तस्थैर्य में हेतु है। इस ज्योतिष्मती के विवरण में आरण्यक जी ने कहा है कि–'परम सुखमय सात्त्विक भाव अभ्यस्त होने पर उसके द्वारा चित अवसिक्त रहता है, अतः इसका नाम विशोका है, और सात्त्विक प्रकाश या ज्ञानालोक के आधिक्य के कारण इसका नाम ज्योतिष्मती है, यहाँ ज्योतिः तेजस् नहीं है, अपितु सूक्ष्म, व्यवहित तथा विप्रकृष्ट विषय का प्रकाशकारक ज्ञानलोक है। भाष्यकार ने भी इस प्रवृत्ति को प्रवृत्त्यालोक कहा है। ज्योतिष्मती की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि बुद्धिरूप तेजोगुण की भाँति स्वयं अपने तथा दूसरे को प्रकाशित करने वाला तथा आकाश की तरह व्यापक परिमाण वाला है, ऐसी बुद्धि में एकाग्रता स्थापित होने से बुद्धिविषयिणी प्रकृष्टा वृत्ति सूर्यादि की प्रभा के सदृश विशेष आकार के साथ विकल्पित होती है। इस प्रकार बुद्धिरूप विषय के ज्योतिर्मयत्व होने के कारण तद्विषयिणी प्रवृत्ति को भी

(१७) भाष्यटीका, १/३५ (१८) भा० १/३६ (१९) त०वै०, १/३६, यो. वा. १.३६

ज्योतिष्मती कहा जाता है।[२०]

विशोका ज्योतिष्मती दो प्रकार की है। जैसे–बुद्धिसाक्षात्कार और विविक्तपुरुषसाक्षात्कार है। अब इस प्रसङ्ग में यह शङ्का उठाई जा सकती है कि– जब आत्मसाक्षात्कार निष्पन्न हो गया तब उसके बाद चित्तस्थैर्य में क्या प्रयोजन रह जाता है? क्योंकि आत्मसाक्षात्कार अविद्या निवृत्ति के अनन्तर प्राप्त होता है तथा अविद्या निवृत्ति होने पर चित्त कृतकृत्य हो जाता है। चित्त की कृतकृत्यता के बाद पुनः चित्तस्थैर्य की आवश्यकता ही क्या है? क्योंकि चित्त ने तो स्थितिपद को पहले ही प्राप्त कर लिया है।

इसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त प्रश्न निराधार है। क्योंकि आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर भी अखिलसंस्कारों का नाश करने वाली असम्प्रज्ञात योग की परम्परा अपेक्षित है और जीवात्मसाक्षात्कार के अनन्तर भी परमात्म साक्षात्कार को चाहने वाले के निमित्त परमात्म योग की अपेक्षा रहती है।[२१]

**4) विरक्तचित्तचिन्तनम्–** सांसारिक विषयों से विरक्त हुआ चित्त का चिन्तन करने से चित्त स्थिति पद को प्राप्त करता है। अतः सूत्रकार कहते हैं कि रागशून्य कृष्णद्वैपायन, नारदादि योगियों के चित्त को आलम्बन करते हुए, जब तद्विषयक धारणा योगी करता है, तब उस तदाकारता को प्राप्त योगी का चित्त भी इस सांसारिक विषयों से विरक्त होता हुआ स्थिति पद को प्राप्त कर जाता है। जिस प्रकार का चित्त नारदादि का है, उनका धारणा से योगी का चित्त भी उसी प्रकार का हो जाता है।[२२] जैसे लोक में भी देखा जाता है कि जब मनुष्य किसी विशेष चिन्तन को बारम्बार करता है तो वह उसी प्रकार का स्वाभाविक आचरण करने लगता है। जैसे कामुकविषय के चिन्तन से चित्त कामुक हो जाता है।[२३]

**5) स्वप्ननिद्राज्ञानान्यतरज्ञानचिन्तनम् –** स्वप्न की अवस्था में ज्ञान विषय अथवा निद्रा की अवस्था में ज्ञान विषय, इन दोनों में से किसी एक विषयक ज्ञान का चिन्तन करने से चित्त स्थिति पद को प्राप्त करता है। इसी को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार पतञ्जलि ने कहा है कि स्वप्नज्ञान अथवा निद्राज्ञान का आलम्बन करके तदाकार परिणत हुआ योगी चित्त स्थिरता को प्राप्त होता है।

तात्पर्य है कि जब जाग्रत कालिक ज्ञान में ही पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को आच्छादित करना और भङ्गुरविषयकत्व होना इन दोनों में साम्य होने से जो स्वप्नकालिक ज्ञान का दर्शन किया जाता है, उसको आलम्बन के रूप से स्वीकार करने से, वहाँ पर चित्त विरक्त होकर स्थिर हो जाता है। अतः स्मृति और श्रुति दोनों में समस्त जगत् को स्वप्न के सदृश कहा गया है। इसी प्रकार जब जाग्रत पुरुषों में सुषुप्ति के

(२०) मणिप्रभा, १/३६ (२१) यो०वा०, १/३६ (२२) त०वै०, १/३७।
(२३) यो०सू०, १/३७।

समान ज्ञान किया जाता है, तब उनके व्यवहारों से विरक्त हुआ चित्त स्थिर हो जाता है। क्योंकि दोनों में पदार्थों की वास्तविक स्वरूप आच्छादित कर देता है तथा निद्र दोष के कारण बीच-बीच में स्वप्नदर्शन की भाँति जगत् का भी दर्शन हो जाता है।

**6 ) यथाभिमतध्यान–** योगी का जो अभीष्ट हो, वह उस विषय का ध्यान करके भी चित्त को स्थिर कर सकता है।[२४] इसका अभिप्राय है कि चाहे कोई भी स्वरूप हो, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, गुरु, माता, पिता आदि इनमें से जो भी अभीष्ट हो योगी को उसका ध्यान करना चाहिए।[२५] क्योंकि अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी ध्येयतत्त्व का ध्यान करने से एकाग्रता को प्राप्त हुआ चित्त विवेकज्ञानपर्यन्त अन्य सूक्ष्म पदार्थों में भी अन्य उपाय की अपेक्षा किये बिना ही स्थितिपद को प्राप्त कर जाता है। राघवानन्द जी ने यहां पर अभिमत को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जो शास्त्र से सम्मत हो उस अभिमत का आलम्बन करने से चित्त स्थिति पद को प्राप्त करता है। भास्वतीकार के अनुसार जो कुछ भी अतात्त्विक अभिमत हो उस पर ध्यान करने से चित्त स्थिति पद को प्राप्त कर जाएगा। उसके पश्चात् तात्त्विक विषय पर स्थिति पद को प्राप्त कर सम्प्रज्ञातयोग की सिद्धि को प्राप्त हुआ योगी की सम्प्रज्ञातपुरस्सर असम्प्रज्ञातयोग की सिद्धि सम्भव है।[२६] देखा जाये तो यह अन्तिम उपाय साधक के लिए सरलतम तथा उपयोगी हो सकता है क्योंकि इसमें साधक योगी को सभी प्रकार के बन्धनों से छूट देकर उसकी अभिरुचि पर छोड़ दिया गया है। देखा जाता है कि जब किसी को कोई वस्तु नीयत से करनी पड़ती है तो वह उसको बन्धन समझता है और बन्धन रहने से चित्त अथवा मन की प्रवृत्ति नहीं होती पर जब उसको यथेच्छा पर छोड़ दिया जाता है तो वह प्रसन्नापूर्वक किसी कार्य में प्रवृत्ति होता है। अत: अभिमत ध्यान वाली प्रक्रिया भिन्नरूचिर्हि लोक: के सिद्धान्त के कारण उत्तम प्रतीत होती है।

वी.वी.बी. आई. एस एण्ड आई.एस ( पी.यू. ) साधु-आश्रम, होशियारपुर।

---

(२४) यो०सू०, १/९।   (२५) मणिप्रभा, १,३९।   (२६)पात०र०, १/३९।

# वेदों में वर्णित जल-चिकित्सा

– डॉ. विजय कुमारी गुप्ता

अपने मूल की ओर लौटना सृष्टि का शाश्वत नियम है। चिकित्साक्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। आजकल प्राकृतिक चिकित्सा Naturopathy सर्वोपरि प्रचलित है। प्राचीनकाल में रोगों से मुक्ति के रामबाण, चिकित्सोपयोगी दो प्रकार की वस्तुओं का समावेश था– एक जल,वायु, अग्नि, सूर्य आदि और दूसरी औषधि, वनस्पति इत्यादि।

जल जहाँ स्वास्थ्य के लिए प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ उपहार है वहीं चिकित्सा के साधन के रूप में जीवनदायी तत्त्वयुक्त होने के कारण सर्वोत्कृष्ट भी है। वेदों में जल के विभिन्न गुणों का उल्लेख किया गया है। सृष्टि के आदि से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो उपयोगी होता है। वेदों की सृष्टि पृथिवी से पूर्व कही है। "**अप एव ससर्ज आदौ**" यह वैदिक वाक्य है। दार्शनिक क्षेत्र में भी जलतत्त्व के बाद ही पृथिवी-तत्त्व की उत्पति दिखाई गई है।[1] जल शान्ति देने वाला है।[2] शरीर ही नहीं जब मन भी बेचैन हो जाता है तो जल पीने पर मनुष्य थोड़ा आश्वस्त हो जाता है। जल मीठा भी है।[3] जल पवित्र होने के कारण पवित्रता करने वाला भी है।[4]

वेद में जल की उत्पत्ति का भी वर्णन है। वहां मित्रा-वरुण को जल का देवता मानकर उनसे जल की उत्पत्ति वर्णित है।[5] जल पहले वायुरूप था। मित्र और वरुण ये दो वायु हैं। ये जब अग्नि के समक्ष मिलते हैं तब जल को उत्पन्न करते हैं। ऋग्वेद में जल का चार प्रकार का वर्णन है।[6]

1) आकाश से प्राप्त होने वाला दिव्य जल ।
2) झरनों से निकलने वाला जल ।
3) जो कुएं और बाबड़ियों से निकलने वाला जल।
4) जो स्वयं स्रोत से फूटकर बाहर निकलता है।

सब प्रकार के जल निर्दोष माने जाते हैं। यर्जुवेद में भी जल के अनेक प्रकारों का वर्णन है। सामान्यत: जल के औषधितत्त्व का स्पष्ट उल्लेख सर्वत्र किया गया है।[7] इतना ही नहीं जल से मन में स्थित पाप, द्रोहभाव, अपशब्द और मिथ्याचरण को बहा देने की प्रार्थना भी मिलती है।[8] वेद जलों को सर्वश्रेष्ठ वैद्यमाता का

(1) तैत्तिरीयोपनिषत् (2) ऋग्वेद 7.35 (3) यजुर्वेद-11/38 (4) ऋग्वेद 7/47/3
(5)ऋग्वेद 7/64/1 (6) ऋग्वेद 7/49/2 (7)अप्स्वन्तरमृतमासु भेजषम्। ऋग्वेद 1/5/23 (8) ऋग्वेद 1/5/22

नाम देता है।[9] आँखों की दृष्टि वर्धकऔर नीरोग रखने का उत्तम साधन जल है।[10]

अथर्ववेद के मन्त्रों में हृदय की जलन, आंखों, एड़ियों व पंजों की जलन को शान्त करने, सद्योव्रण चिकित्सा रक्तस्राव को रोकने आदि रोगों में जल का उपयोग बताया है।[11] जल द्वारा दु:स्वप्नों को दूर करने की बात भी कही गई है। जल को समस्त रोगों की औषधि बताते हुए जन्मजात रोगों से छुटकारा दिलाने वाला भी कहा गया है।[12] यजुर्वेद के मन्त्र में जल-चिकित्सा का रहस्य, मूल, गूढ़ तत्त्व बताया गया है।[13] जल पीने के बाद बल बढ़ाने वाला, पेट में कष्ट न देने वाला, क्षयरोग को दूर करने वाला, अन्न से उत्पन्न दोषों को दूर करने वाला, पाप की प्रवृत्ति को दूर करने वाला, सरलता की दिव्य प्रकृति को बढ़ाने वाला, मरण के भय को दूर करने वाला अर्थात् अपमृत्यु के भय को दूर करने वाला, दिव्य शक्ति से युक्त जल हमें स्वाद भी लगे। इसमें जल के चिकित्सात्मक गुण दिये गये हैं। उदक के सौ नाम निघण्टु के अध्याय 1.12 में दिये हैं। उनमें से कुछ नामों के विचार से जलचिकित्सा विषयक वैदिक दृष्टि का भी पता चलता है। वेद में वर्णित चिकित्सक अश्विनौ का भी सम्बन्ध जल से है। वे 'सिन्धुमातर:' कहे गये हैं।

मन्दिरों में स्नान, पूजा, आचमन आदि धार्मिक दृष्टि से जल की अनिवार्यता होने पर वहां तालाब आदि होते हैं। उनके अलावा कुछ मन्दिरों में ऐसा जल पाया जाता है, जिसका पान करने पर या स्नान करने पर रोग दूर हो जाते हैं। जैसे बद्रीनाथ में गर्म पानी, रामेश्वरम् में 24 कुएँ हैं जिनके पानी में अलग-अलग किस्म के रोगों को दूर करने की क्षमता है। विदेशों में जल-चिकित्सा को Hydrotherapy के नाम से जाना जाता है। जर्मनी के महान् आचार्य सर लुईकूने ने जल के विभिन्न प्रयोगों द्वारा कई रोगों को सफलतापूर्वक दूर किया। प्राकृतिक चिकित्सा में जलोपचार की कई विधियाँ पायी जाती हैं। प्राय: बुखार के बढ़ने पर रोगी के सिर पर ठण्डे पानी की पट्टी, गर्म पानी की पट्टी इत्यादि रखकर बुखार की तेज़ी को कम करने का प्रचलन आज भी साधारण लोगों में है।

एलोपैथी में भी जल का अपना महत्त्व है। De-Hydration का इलाज जल से ही सम्भव है। दवाएँ विभिन्न रासायनिक पदार्थों के रसों से बनाई जाती हैं। जल चिकित्सा के पीछे एक वैज्ञानिक तथ्य छिपा है। चिकित्सा में अनुभव ही उपचार का आधार है। चिकित्सा-विज्ञान दर्शनात्मक है। शरीर पंचभूतों से बना है। उसमें सक्रियता चेतन तत्त्व के कारण बनी हुई है। सप्तधातु जो शरीर में हैं। वे हैं- रस, रक्त, मांस,मद,अस्थि, मज्जा और शुक्र ।[14] इनमें रस आधार तत्त्व है और

(9) आपो अस्मान् मातर: शुन्धयन्तु.... ऋग्वेद-10/17/10

(10) ऋग्वेद , 1.5.23 (11) अथर्ववेद-6/24/1,2 6/57/2 (12) अथर्ववेद-3/7/5

(13) यजुर्वेद-4/12 (14) सुश्रुत संहिता - 14/6

वह पानी का गुण है। चरक मुनि के अनुसार- 'शरीर में दो तत्त्व हैं। अग्नि और जल-शरीर की उष्णता, उमंग, चपलता स्थिर रखना आदि अग्नि का कर्म है- और शान्ति, समाधान और पुष्टि का कार्य जल के अधीन है।[15]

यह निर्विवाद सत्य है कि शारीरिक रोगों का आगमन बाहर से नहीं होता। अप्राकृतिक जीवन से शरीर में विकार पैदा होते हैं। तब प्रकृति उन्हें निकालने की चेष्टा करती है। शरीर का निर्माण ही ऐसा हुआ है कि वह अपने से भिन्न अप्राकृतिक विकारों को शरीर में पचा ही नहीं पाता। इसलिए रोग को दूर करने के लिए हमें उन्हीं तत्त्वों का सहारा लेना चाहिए, जिनसे यह शरीर निर्मित हुआ है। तभी तो स्थायी रूप से तथा जड़ से रोग निकल जाने की सम्भावना रहती है। कितना महान् सत्य है और इसी का ऋषियों ने साक्षात्कार करके सूक्ष्म रूप में रोग निवारण में जल-चिकित्सा का संकेत दिया है। जलचिकित्सा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें रोग का नहीं, बल्कि रोग की जड़ का इलाज किया जाता है।

जल से जो आरोग्यवर्धक, रोगनिवारक तत्त्व 'रस' है उसका उल्लेख भी संहिताओं में मिलता है। यजुर्वेद में जल को कल्याणकारी रस कहा गया है। :-

**यो वः शिवतमो रसः।**[16]

**अपो अद्यान्वचारिषं रसेन समसूक्ष्महि।**[17]

अतः कहा जा सकता है कि वेदों में स्थान-स्थान पर जल के गुणों का वर्णन किया गया है। जल को औषधि के रूप में सेवन कर अनेक रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। इसी को जल-चिकित्सा कहा गया है। जल के द्वारा हमें निरन्तर प्राण, जीवन, बल, आरोग्यता औषधि, रोग निवारक शक्ति एवं सुख प्रास होता है।

**डी०ए०वी० कॉलेज, जालन्धर शहर**

(15) चरक संहिता-26/25 (16) यजुर्वेद-36/15 (17) यजुर्वेद-20/22

# अभिज्ञानशाकुन्तल में ऋषित्रिपुटी

– डा. डायालाल मालदेभाई मोकरिया

भारतीय संस्कृति ऋषिमुनियों की संस्कृति है। भारतवर्ष के आर्षद्रष्टा ऋषिमुनियों ने मनुष्य-जीवन का महत्व समझा है। इसलिए ही मनुष्य-जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए उनको आवश्यकता अनुसार अवसर मिला, उत्तमोत्तम मार्गदर्शन दिया है। भारतीय-साहित्य का अन्वेषण हमें इस बात की हम को स्वाभाविक ही समझ मिलती है।

रामायण, महाभारत, पुराण इत्यादि ग्रंथों में भी वाल्मीकि, व्यास इत्यदि ऋषिमुनियों ने हमारी उत्तम संस्कृति का गीत गाया है और विविध कथाओं और चरित्रों का आलेखन करके हमारे लिए प्रेरणादायी संदेश दिया है। इसलिए वाल्मीकि मुनि के लिए कहा गया है- राम राम-ऐसे कुंजन करती हुई कविताशाखा पर बैठी हुई वाल्मीकि जी की कोयल जैसी वाणी वन्दनीय है।[१] कोयल का कर्णप्रिय कण्ठ सब को आनन्द ही देता है वैसे ही महाकवि वाल्मीकि ने रामायण की रचना मधुरता से की है और सबको आदर्श मानवजीवन जीने का संदेश दिया है। महाभारत अष्टादशपुराण आदि के रचयिता व्यासमुनि को भी महाकवि बाणभट्ट ने सम्यक् श्रद्धांजली दी है-

**नमः सर्वविदे, तस्मै व्यासाय।**
**चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्।।**[२]

सब जानने वाले और कविस्रष्टा व्यासजी को नमस्कार है क्योंकि उन्होंने सरस्वती नदी की तरह महाभारत रूपी अपनी वाणी से भारतवर्ष को पवित्र किया है। रामायण, महाभारत और पुराणों को आधार बनाकर कालिदास, भरत, श्रीहर्ष, भारवि इत्यादि अनेक कविओं ने विविध ग्रन्थों की रचना कर भारतीय अस्मिता प्रकट है।

संस्कृत साहित्य के अतिप्रसिद्ध कवि कालिदास ने अपने विश्वविख्यात नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल में कण्व, दुर्वासा और मारिच ऋषिओं का निरूपण करके ऋषिसंस्कृति को उजागर करने का बहुत अच्छा प्रयत्न किया है।

ऋषि बनने के लिए परिवार छोड़ना आवश्यक नहीं है। मनुष्य संसार में रहकर भी ऋषि बन सकते हैं। तपःपूत ऋषि पारिवारिक जीवन को प्रभावित करता है, इसलिए हम अभिज्ञानशाकुन्तल में देख सकते हैं कि विश्वामित्र तप कर रहे थे किन्तु मेनका का संसर्ग हो जाता है और शकुन्तला का प्रादुर्भाव

(१) श्रीरामरक्षास्तोत्रम्, ३४

(२) हर्षचरितम्, १-३

होता है । इस शकुन्तला का कण्व ऋषि पालन-पोषण करके पितृकार्य करते हैं । इतना ही नहीं इस पुत्री के प्रतिकूल भाग्य का शमन करने सोमतीर्थ जाते हैं । कण्वऋषि में कवि कालिदास ने उत्तम पिता का दर्शन कराया है । तपोवन की विविध क्रियाएँ और प्रवृत्तियाँ इस अद्भुत व्यक्तित्व में एकाकार हो जाती हैं । शकुन्तला का प्रेम, शार्ङ्गरव आदि शिष्यों का विद्याभ्यास, तप आदि यह ऋषिमुनि के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं । प्रथम तीन अंकों में उनका प्रत्यक्ष प्रवेश नहीं है तो भी उनकी परोक्ष उपस्थिति वातावरण को प्रभावित करती है । चतुर्थ अंक में कण्व ऋषि की प्रत्यक्ष उपस्थिति होती है । शकुन्तला का विदाई-प्रसंग निस्पृही इस ऋषि का भी कंठावरोध करता है । वह रो पड़ते हैं।[३] कन्याविदाई प्रसंग में पिता जो वेदना का अनुभव करता है वह यहाँ बताकर साबित कर दिया है कि स्वाभाविक पारिवारिक प्रेम सबको प्रभावित करता है ।

दुर्वासा ऋषि के चरित्रनिरूपण से भी कवि ने पितृधर्म का निर्देश दे दिया है। कहा है कि दुर्वासा का शाप तो मात्र कवि का रूपक है। दुष्यंत और शकुन्तला का बंधनहीन गुप्त मिलन सनातन शाप से युक्त है । उन्मत्तता का उज्ज्वल उन्मेष क्षणिक ही होता है । उसके बाद अवसादन का,अपमान का और विस्मृति का अंधकार घेर लेता है । यह सनातन नियम है।[४] जब शकुन्तला अतिथिधर्म भूल जाती है तब दुर्वासा उनको पितृवत् दण्ड देकर अपने कर्तव्यपालन में प्रमाद न करने का सन्देश देते हैं और इस शाप की वजह से ही शकुन्तला अन्तःपुर की एक सामान्य स्त्री से बढ़कर एक गौरवयुक्ता स्त्री बन गई थी। इस प्रसंग के बारे में कवि और विवेचक उमाशंकर जोशी कहते हैं कि आत्मशोधन के मार्ग पर पैर रखने वाला शाप निष्ठुर वेश में छिपा हुआ आशीर्वाद ही है।[५] ऋषिमुनि के शाप अथवा कठोरता के पीछे भी हमारा हित ही छिपा हुआ होता है ।

शाकुन्तल के अन्तभाग में देवताओं के मातापिता अदिति और मारिचऋषि आते हैं । इस दम्पति के सान्निध्य में शकुन्तला और दुष्यंत का टूटा हुआ दाम्पत्य जीवन जुड़ जाता है । अनायास से ही उनमें आदर्श, सहिष्णुता और गृहिणी के गुण प्रतिबिम्बित होते हैं । यह दम्पति जब दाम्पत्य-धर्म की बात करते हैं तब ही शकुन्तला और उनका दाम्पत्यप्रेम विशुद्ध करते हैं ।

अभिज्ञानशाकुन्तल में कवि नायिका शकुन्तला के जीवन को बदलते हुए रेखांकन में ऋषियों को भी बदलते चलते हैं । तो भी तीनों ऋषियों की एकरूपता में बाधा नहीं आती। ये तीनों ऋषि-मुनि हमारे जीवन-व्यवहार का उत्तम मार्गदर्शन करते हैं ।

**पूर्व साहित्य संकाय अध्यष, अनुस्नातक भवन,**
**श्री सोमनाथ संस्कृत यूनिवर्सिटी, वेरावल( गुजरात )**

(३) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-६ (४)प्राचीन साहित्य, पृ.-२२ (५)शाकुन्तल, पृ-३८

# महाकवि कालिदास की जन्मभूमि गढ़वाल और उनके साहित्य में वर्णित हिमालय

–डॉ० रंजू उनियाल

संस्कृत–वाङ्मय के देदीप्यमान नक्षत्रों में महाकवि कालिदास का नाम सर्वोपरि है। वे भारत के किस भू–भाग में पैदा हुए इस सम्बन्ध में विद्वान् कई वर्षों से शोधरत हैं। कई विद्वानों ने अपने भिन्न–भिन्न मत स्थापित करने के प्रयास किए हैं किन्तु आज तक भी उनके जन्म स्थान के बारे में विद्वान् सर्वमान्य व विवादरहित एकमत स्थापित नहीं कर पाए हैं। कालिदास की रचनाओं को भारतवर्ष में जो लोकप्रियता हासिल हुई है, उसको मद्देनजर अनेक साहित्यकारों ने उन्हें अपने–अपने क्षेत्र का बताने का प्रयास किया है। दूसरी ओर महाकवि ने अपनी कृतियों में भी ऐसा कुछ उल्लेख नहीं किया, जिससे यह साबित हो सके कि वह भारत के किस भू–भाग में पैदा हुए। आज भी महाकवि के साहित्य के अनेक शोधकर्ताओं की इस बारे में प्रबल जिज्ञासा है कि वह किस क्षेत्रविशेष से संबन्ध रखते थे।

इसमें दो राय नहीं कि ऐसे महान् प्रकृति–पुरोहित महाकवि जिसके जन्म–स्थान के बारे में कोई पुख्ता प्रमाण न हो, हर कोई उन्हें अपने क्षेत्र का बताने का प्रयास करता है। महाकवि की रचनाओं में जिस किसी भी क्षेत्र का वर्णन आया है, उस क्षेत्र के विद्वानों ने उन्हें अपने यहां का बताने का प्रयत्न किया है। उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में उनकी कृतियों के विवरण के अध्ययन से ही विश्लेषण कर विद्वानों ने अपने मत प्रकट किए हैं। उनमें कुछ एक अपने तर्कों के आधार पर उन्हें विदिशा,काशी, सिरसा, बंगाल, कश्मीर, मालवा, विदर्भ, उज्जयिनी व अयोध्या आदि स्थानों का प्रमाणित करते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ उन्हें गढ़वाल हिमालय की मन्दाकिनी घाटी का बताते हैं।

एक धाराविशेष के विद्वान् जो उन्हें गढ़वाल हिमालय से बाहर का घोषित करते हैं–उनमें डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाज, प्रो० भाष्कर शास्त्री, डॉ० वासुदेव विष्णु मिरासी, प्रो० झाला, डॉ० लक्ष्मीधर कल्ला, प्रो० परांजपे, पं० सूर्यनारायण व्यास, डॉ० आदित्यनाथ झा, डॉ० रमाशंकर तिवाड़ी, डॉ० भगवत शरण उपाध्याय, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं। बाद में इनमें से कुछ विद्वान् उन्हें गढ़वाल हिमालय का मानने को राजी हो गये थे। डॉ० भगवत शरण उपाध्याय ने भी अपने उपन्यास 'कालिदास' में स्वीकार किया कि कालिदास का जन्म अल्कापुरी में ही हुआ था।

उत्तराखण्ड गढ़वाल हिमालय को महाकवि

की जन्मभूमि मानने वाले विद्वानों में आचार्य वागीश विद्यालंकार, प्रो० कमलारत्नम्, पं० बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिधि सिद्धांतालंकार, आचार्य धर्मानन्द जमलोकी, श्री सदानन्द जखमोला, श्री हरिदत्त भट्ट शैलेश, श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी, श्री भजन सिंह 'सिंह', श्री लक्ष्मी चन्द्र शास्त्री, डॉ० राम प्रताप तिवाड़ी, श्री इन्दु प्रकाश उपाध्याय, श्री अच्युतानन्द घिल्डियाल, श्री सोमनाथ मथुरादास दीक्षित, आचार्य सुरेशानन्द गौड़, श्री चैतराम भट्ट आदि प्रमुख हैं।

अधिकतर विद्वानो ने कालिदास के ग्रंथों के विवरण से अपनी मान्यतायें स्थापित की हैं। मेघदूत के मात्र कुछ श्लोकों में उज्जयिनी का विवरण होने से डॉ० मिरासी आदि विद्वानों का अनुमान है कि महाकवि की जन्मभूमि उज्जयिनी है। इसी प्रकार डॉ० कल्ला ने हिमालय की स्थिति कश्मीर में मानकर कालिदास को कश्मीर का बता दिया। इन मतों का डॉ० शिवानन्द नौटियाल ने अपने अकाट्य प्रमाणों से खण्डन किया है। उनकी पुस्तक 'गढ़वाल के लोक नृत्य गीत' का यह अंश द्रष्टव्य है :-

'कालिदास ने हिमालय के गढ़वाल-क्षेत्र को अपना प्रिय क्षेत्र चुना। कुमारसंभव, मेघदूत और रघुवंश काव्यों में उन्होंने हिमालय के गढ़वाल-क्षेत्र का अतिसुन्दर वर्णन किया है। शकुन्तला और विक्रमोर्वशी नाटकों में भी उन्ही घटनाओं का चित्रण उन्होंने किया जो गढ़वाल क्षेत्र में घटीं। कुमारसंभव और मेघदूत में उन्होंने मंदाकिनी घाटी का जितना सजीव चित्रण किया है उससे स्पष्ट होता है कि वे इसी घाटी के मूल निवासी थे। अन्यथा इतना सुन्दर यथार्थ और सजीव वर्णन कोई भी कविकल्पना से नहीं कर सकता है।[1]

मात्र दो चार श्लोकों के विवरण से जिन अन्य स्थानों के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने मतों की पुष्टि करने का प्रयास किया है उनमें भी कोई दम नहीं है। इतना तो निश्चित है कि कालिदास को भारत के भूगोल का व्यापक ज्ञान था। इसी कारण महाकवि ने पूरब से पश्चिम उत्तर से दक्षिण के अनेक क्षेत्रों को अपनी लेखनी से स्पर्श किया है। पर इसका यह आशय नहीं कि कालिदास ने वहां जन्म लिया है। कालिदास के अध्येता अधिकतर विद्वान् इस बात पर एक मत हैं कि महाकवि कालिदास उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे परन्तु इससे भी उनका वहां जन्म लेना सिद्ध नहीं होता।

महाकवि के गढ़वाल हिमालय के मंदाकिनी घाटी के होने के बारे में अनेक विद्वानों ने बड़े खोजपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं। इस संदर्भ में पं० सदानन्द जखमोला ने अपनी 'महाकवि कालिदास' नामक पुस्तक में गम्भीर अध्ययन के उपरान्त उन्हें कविठा ग्राम का मूल निवासी होना बताया है। संस्कृत के जाने माने विद्वान् पं० बालकृष्ण भट्ट ने भी अपनी पुस्तक 'कालिदास जन्म भू-विलास' में महाकवि की जन्मभूमि

(1) डॉ० शिवानन्द नौटियाल, गढ़वाल के लोकनृत्य गीत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

कविठा को ही प्रमाणित किया है। इन्होंने वे सभी जगह खोज निकाली हैं, जिसका वर्णन कवि ने मेघदूत एवं कुमारसंभव में किया है।

आचार्य धर्मानन्द जमलोकी 'कालिदास की जन्मभूमि गढ़वाल हिमालय' में भी अनेक प्रमाणों के साथ उन्हें इस क्षेत्र का होना बताते हैं। श्री निधि सिद्धांतालंकार ने भी अपनी पुस्तक 'मालिनी के वनों में' कण्वाश्रम को ढूंढकर महाकवि को गढ़वाली मूल का सिद्ध किया है। संस्कृत की जानी मानी विदुषी प्रो० कमलारत्नम् ने अपने एक लेख में, इस स्थान का भ्रमण करने के उपरान्त लिखा है कि वह जैसे-जैसे इस स्थान की ओर बढ़ती गईं उन्हें महाकवि के स्थानविशेष होने के पुख्ता प्रमाण मिलते गए। सब कुछ देखने-परखने के बाद मेरा विश्वास है कि महाकवि का शैशव अवश्य यहीं बीता। डॉ० अच्युतानन्द घिल्डियाल ने भी 'कालिदास और उसका मानवीय इतिहास' 'कालिदास की आत्मकथा और मेघदूत' तथा 'कालिदास की प्रेरणा का मूल स्रोत हिमालय' आदि ग्रंथों में उन्हें गढ़वाल हिमालय के कविठा ग्राम का बताया है। उन्होंने अपने शतक में बहुत ही अच्छे ढंग से इस ओर संकेत किया कि कालिदास गढ़वाल के ही थे। उनके कालिदास शतक का यह अंश जिसका चित्र उन्होंने कुछ इस तरह से खींचा है।[2]

कालिदास ने अपनी रचनाओं में भारत की चारों दिशाओं के अनेक क्षेत्रों का वर्णन किया है। किन्तु कालिदास ने अपने साहित्य में गढ़वाल हिमालय का जितना सूक्ष्म वर्णन किया है वह शायद ही अन्य किसी भू-भाग का हुआ हो। हिमालय का जो स्वानुभूत वर्णन महाकवि की रचनाओं में परिलक्षित होता है वह अन्यत्र कहीं दुर्लभ है। कालिदास ने अपने साहित्य में विशेषकर कुमारसंभव और मेघदूत में हिमालय के सौन्दर्य का सांगोपांग वर्णन किया है। महाकवि की रचनाओं के उदाहरणों के आधार पर सभी प्रकार के तथ्य स्पष्ट होते हैं। अपने प्रथम काव्य कुमारसंभव में महाकवि ने हिमालय का अनेक विशेषताओं के कारण विशद वर्णन किया है और उसके विस्तृत आकार के कारण उसे पृथ्वी के नापने का मानदण्ड भी माना है।[3]

इसी प्रकार रघुवंश महाकाव्य के प्रथम श्लोक में हिमालय के देवता शिव और पार्वती का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है।[4] इसलिए महाकवि के प्रेरणा का मूल स्रोत हिमालय को मानने में किसी प्रकार शंका नहीं होनी चाहिए।

मेघदूत गीतिकाव्य और कुमारसंभव काव्य का पूरा कथानक गढ़वाल हिमालय में ही विचरण करता है। कालिदास के ग्रंथों गें वर्णित स्थान औषधिप्रस्थ, यज्ञशैल, मेरू,

(2) डॉ० अच्युतानन्द घिल्डियाल, कालिदास की प्रेरणा का मूल स्रोत हिमालय, भारतीय प्राच्य विद्या शोध संस्थान वाराणसी।

(3) कुमारसंभव, 1 सर्ग, 1 श्लोक

(4) रघुवंश महाकाव्य, 1 सर्ग, 1श्लोक।

मंदर, हेमकूट, गंधमादन, कैलाश, अलकापुरी, कण्वाश्रम, वशिष्ठ आश्रम, मालिनी, मंदाकिनी आज भी अपनी पहचान बनाए हुए हैं। महाकवि ने गढ़वाल हिमालय की औषधियों, पर्वतों, रत्नों, नदियों, जीवों तथा जातियों का जिस बारीकी से वर्णन किया है वह मात्र किसी स्थान विशेष के बारे में पढ़ने या जानकारी रखने के आधार पर नहीं हो सकता है।

कुमारसंभव में शिव-पार्वती के विवाह प्रसंग में हरिद्रालेपन, मंगलस्नान आदि गढ़वाल हिमालय में प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार ही हुआ है। शाकुन्तलम् में दुल्हन की विदाई की साकार अभिव्यंजना है। उनके नाटकों के पात्रों ने जिस प्राकृतिक भाषा का प्रयोग किया है उसके संस्कार आज भी गढ़वाली भाषा में मौजूद हैं। किसी भी क्षेत्र का इतना सूक्ष्म वर्णन कोई भी विद्वान् उस क्षेत्रविशेष की यात्रामात्र करने से नहीं कर सकता है। गढ़वाल हिमालय के कविठा ग्राम में उनकी जन्मस्थली सिद्ध करने वाले विद्वानों ने उक्त सभी बातों का अध्ययन करने के उपरान्त ही उन्हें इस क्षेत्र-विशेष का प्रमाणित किया है। कविठा ग्राम केदारघाटी के गुप्तकाशी के पास सदानीरा मन्दाकिनी के उस पार प्रसिद्ध सिद्धपीठ कालीमठ के पास पड़ता है।

मंदाकिनी मूलतगंगा की एक धारा है जो केदारपर्वत श्रृंखला से निकलकर अलकनन्दा में मिल जाती है। मंदाकिनी का उल्लेख महाकवि ने अपनी रचनाओं में सर्वाधिक किया है जो कवि के मंदाकिनी घाटी स्थित कविठा निवासी होने का प्रमाण है। अलकापुरी की यक्षबालाओं का मंदाकिनी की सिक्त हवाओं से खेलने का यह वर्णन देखिए :-

यक्ष मेघ का मार्ग निर्देश करते हुए कहता है। मेघ तुम वहां जाओ जहां सुन्दर कन्यायें मंदाकिनी की ठंडी फुहारों से शीतल हवा का आनन्द लेतीं हुई नदी के किनारे खड़े कल्पवृक्षों की छाया में अपनी तपन मिटाती हुई वर्णित की गई है।[5]

महाकवि ने मंदाकिनी के तट पर पार्वती की बाल क्रीड़ाओं का सुन्दर वर्णन किया है :-

'पार्वती अपने बाल्यकाल में क्रीड़ा निमाग्न होकर सखियों के साथ मंदाकिनी के तट पर घरौंदे वेदिकाएं आदि बनाती है कभी गेंदों से तो कभी गुड़िया बनाकर उससे खेलती दिखाई देती है'।[6]

कुमारसंभव में पार्वती के जन्म-प्रसंग में महाकवि मंदाकिनी की विशषेताएं लिखते हैं कि जैसे अत्यन्त प्रकाशमान लौ को पाकर दीपक, मंदाकिनी को पाकर स्वर्ग का मार्ग एवं व्याकरण से शुद्ध वाणी पाकर विद्वज्जन पवित्र और सुन्दर लगते हैं वैसे पार्वती को पाकर हिमालय भी पवित्र और शोभायमान हो गया।[7]

महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य विशेषकर कुमारसंभव और मेघदूत में हिमालय के अनुपम सौंदर्य का भव्य एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर गढ़वाल हिमालय की प्रकृति का मनोरम चित्रण किया है। कालिदास का मेघदूत गीतिकाव्य प्रकृति

---

(5) उत्तर मेघ, 6 श्लोक (6) कुमारसंभव, 1 सर्ग, 29 श्लोक (7) कुमारसंभव, 1 सर्ग, 28 श्लोक

के लालित्यपूर्ण मनोरम विलास-चेष्टाओं का आधार है- 'आषाढ़ के प्रथम दिवस में ही पर्वत की चोटी से लिपटा मेघ यक्ष को ऐसा लगता है मानो कोई विशालकाय हाथी किसी केले के परकोटे को अपने मस्तक की चोटों से मार-मार कर गिरा रहा है'।[8]

महाकवि की रचनाओं में वर्णित स्थान, जड़ी-बूटियों की आज भी अपनी अलग पहचान है यहां के बारे में उनके ग्रंथों में वर्णित लोधवृक्ष, देवदार, भोजपत्र आदि आज भी इसी नाम से प्रचलित हैं। महाकवि ने गढ़वाल हिमालय में देवदारू वृक्षों की उपयोगिता एवं भोजपत्रों पर लिखने का वर्णन किया है। विद्याधरों की सुन्दरियां गज-विन्दु के समान भोज-वृक्ष की छालों पर धातुओं के रस से अक्षर बनाकर अपने संदेशमय प्रेमपत्र लिखा करती थीं।[9]"

इसी प्रकार हिमालय पर्वत पर प्रदीप्त जड़ी-बूटियों का वर्णन भी महाकवि की रचनाओं में देखने को मिलता है- 'यहां की गुफाओं में रात को चमकने वाली जड़ी-बूटियां भी बहुत होती हैं इसलिए यहां के किरात लोग अपनी प्रियाओं के साथ जब उन गुफाओं में विहार के लिए आते हैं तब ये जड़ी-बूटियां ही उनके लिए तेल के दीपक बन जाया करती थीं।[10]

प्राचीन भारतीय वैदिक और पौराणिक साहित्य हिमालय की श्लाघा से भरा पड़ा है, महाभारत में लिखा है कि भारत का उत्तरीय हिमालय संसार में महापवित्र तथा अति प्रसिद्ध माना गया है। क्योंकि यहां पर प्राचीन आर्यों की प्रथम उत्पत्ति होकर वे बाहर प्रदेश में गए।[11] महाभारत के अनुसार मेरू तथा सुमेरू गढ़वाल का रुद्र हिमालय है। गढ़वाल में केदारनाथ पर्वत को आज भी सुमेरू कहते हैं कालिदास के अनुसार इसकी स्थिति कैलाश और गंधमादन के समीप है। विवाह के पश्चात् भगवान् शिव मेरू, मंदर, कैलास और गंधमादन पर विचरण करते थे।[12] इतना ही नहीं कविर कालिदास स्पष्ट तौर पर लिखते हैं कि- ''हिमालय पर्वत की एक शिला पर शिवजी के पैरों की छाप पड़ी हुई है। सिद्ध लोग उस पर सदैव पूजा की सामग्री भी चढ़ाते हैं। तुम भी भक्ति से विनम्र होकर उसकी प्रदक्षिणा करना। उसके दर्शन से श्रद्धावान् लोग पाप के कट जाने पर देहत्याग करने के अनन्तर स्थाई रूप से शिव के गणों का पद प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।''[13]

कूर्म पुराण के 36वें अध्याय श्लोक-2 में भी गढ़वाल की केदारभूमि में शिला पर शिव के चरण चिन्ह्नों का भी उल्लेख स्पष्ट किया गया है।[14]

यक्ष की प्रेरणा-भूमि अलकापुरी हिमालय है। पूर्वमेघ में शुरू से आखिर तक अलका पंहुचने की ललक दिखाई देती है। कनखल हरिद्वार होते हुए कवि ने मेघ को हिमालय की ऊँचाइयों पर पहुंचाते हुए, अलकापुरी तक का मार्गदर्शन कराया है जिसका समग्र वर्णन गढ़वाल हिमालय की

(8) पूर्व मेघ, 2 श्लोक (9) कुमारसंभव, 1 सर्ग, 7 श्लोक (10) कुमारसंभव, 1 सर्ग, 10 श्लोक
(11) महाभारत (12) स्कन्दपुराण (13) पूर्वमेघ, 59 श्लोक (14) कूर्मपुराण, अध्याय 36, 2 श्लोक

प्रकृति के सौंदर्य से ओत प्रोत है- 'हे मित्र जब तुम कुरूक्षेत्र से कनखल पहुंचोगे वहां तुम्हें हिमालय की घाटियों से मैदान में उतरती हुई गंगाजी के दर्शन होंगे। जिस पतितपावनी ने सीढ़ी बनकर सगर के पुत्रों को स्वर्ग पहुंचाया।'[15]

अपनी जन्मभूमि हिमालय की शीतल पवन अपनी पत्नी के स्पर्श होने से कितनी शान्ति देने वाली प्रतीत हो रही है। यक्षरूपी कालिदास बड़ी उत्सुकता से मेघ को अपना संदेश देकर अपनी बिछुड़ी हुई पत्नी के पास शीघ्र जाने को कहता है- 'हे प्रिये देवदारू वृक्षों की कोपलों को तत्काल खोलकर उकसे दूध से सुगन्धित जो हिमालय की हवायें दक्षिण की ओर बहती हैं, मैं उन्हें यह समझकर आलिंगन करता हूं कि संभवतः ये पहले तुम्हारे अंगों को छूकर यहां आ रही होगीं।'[16]

महाकवि विक्रमादित्य की उज्जयिनी में रहकर भी अपनी जन्मभूमि की विशेषताओं को नहीं भूले। उन्हें हिमालय के उत्तराखण्ड का इतना अच्छा भौगोलिक ज्ञान था कि वह दारुण दुख होने पर भी मेघ को कुछ बताने की न कोई गलती करता है और न ही किसी प्रसंग को कहीं भूलता है। उसे हिमालय के कस्तूरी मृगों की विशेषता का पूरा-पूर ध्यान है। 'कस्तूरी मृगों के बैठने से नाभि-गंध से जिस हिमालय की शिलायें सुगंधित हो गई हैं और वह गंगा जहां से निकलती है ऐसे श्वेत हिमालय पर पहुंचकर मार्ग की थकावट को दूर करने के लिए किसी चोटी पर जब तुम बैठोगे तब शिव के सफेद बैल द्वारा उपर उछाले गए कीचड़ जैसे लगोगे'।[17]

इसी प्रकार यक्षरूपी महाकवि मेघ को अपनी जन्मभूमि अलकापुरी का मार्ग बताते हुए कहता है:- हे सखा तुम वहां पहुंचकर मानसरोवर का जल पीकर, कल्पवृक्ष के कोमल पत्तों को हिलाकर जी भरकर कैलास पर घूमना, कैलास की गोद में बैठी हुई कामिनी की तरह अलकापुरी है। वहीं से गंगाजी की धारा निकलती है वहां ऊंचे-ऊंचे भवनों वाली अलकापुरी पर वर्षा के बादल कामिनी के सिर के जूड़ों पर गूंथे हुए मोतियों की भांति छाए रहते हैं।[18]

हिमालय में प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण अनेक स्थलों का महाकवि को पता था। उन्होंने प्रकृति का कवि बनकर अपनी रचनाओं में सबसे अधिक और मनोहारी वर्णन उत्तराखण्ड के गढ़वाल हिमालय का ही किया है। मेघदूत गीतिकाव्य में कनखल, कैलास, मेरू, मंदर, गंधमादन, मंदाकिनी, मालिनी, अलकनन्दा और अलकापुरी आदि स्थानों का भौगोलिक अस्तित्व भारत के किसी क्षेत्र में नहीं है। कुमारसंभव और मेघदूत के इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि गढ़वाल हिमालय की देवभूमि ऋषि मुनियों की तपस्थली और महाकवि कालिदास की जन्म भूमि थी। जिसका महाकवि ने अपने ग्रंथों में सबसे अधिक वर्णन किया है।

हिन्दी विभाग, हे०न०ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखण्ड

(15) पूर्वमेघ, 54 श्लोक (16) उत्तरमेघ, 46 श्लोक (17) पूर्वमेघ, 56 श्लोक (18) पूर्वमेघ, 66 श्लोक

# डा. सत्यव्रत शास्त्री का संस्कृत-साहित्य को योगदान

– सुश्री ज्योती बाला

कवि ब्राह्मीसृष्टि के सहस्रादिक प्राणियों में मां सरस्वती का दुर्लभ अनुग्रह प्राप्त प्राणी है। माँ सरस्वती के अनुग्रह से ही उसमें उस शक्ति का आविर्भाव होता है जिसे कवित्व के नाम से अभिहित किया जाता है। आधुनिक काल में भी कवि संस्कृत में पद्य, गद्य, नाटक और कथा-साहित्य सभी विधाओं में नव-लेखन विपुल मात्रा में कर रहा है। इन सभी विधाओं शैलियों तथा प्रवृत्तियों का प्रयोग करने वाले आधुनिक संस्कृत-साहित्य में अनेक कवि हुए हैं। उन में से कुछ प्रसिद्ध कवि हैं-रेवा प्रसाद द्विवेदी, ब्रह्मानन्द शर्मा, रहस बिहारी द्विवेदी, राधावल्लभ त्रिपाठी, शङ्करदेव अवतरे, सत्यव्रत शास्त्री आदि ।

**जन्म** – संस्कृत-साहित्य के अद्वितीय एवं सारस्वत-साधना में लीन डा. सत्यव्रत शास्त्री का जन्म 29 सितम्बर 1930 ई० को लाहौर में हुआ । भारतीय तिथि के अनुसार जन्म नवरात्रों की सप्तमी तिथि को हुआ था । इनके पिता श्री चारूदेव शास्त्री, जो एक प्रसिद्ध वैय्याकरण, लेखक, सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री तथा प्रभावशाली वक्ता भी थे ।[1]

**शिक्षा-दीक्षा** – डा० सत्यव्रत की शिक्षा-दीक्षा पिता चारूदेव शास्त्री की देखरेख में हुई। बी०ए० आनर्स संस्कृत में पंजाब विश्वविद्यालय में कीर्तिमान् स्थापित कर एम०ए० संस्कृत में भी प्रथम स्थान प्राप्त कर पदक अर्जित किया। उसके पश्चात् काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय से भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय में दिक्काल-मीमांसा विषय पर पी०एच०डी० की। शास्त्री जी का विवाह 8 मार्च 1957 ई० को संस्कृत-विदुषी उषा के साथ सम्पन्न हुआ । 19 अगस्त 1959 ई० को डा० सत्यव्रत शास्त्री दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रवक्ता बने । चार वर्ष तक प्रवक्ता के पद पर नियुक्त होने के पश्चात् वे 1963 में संस्कृत-विभाग में रीडर के पद पर नियुक्त हुए और फिर 13 अगस्त 1970 ई० में पं० मनमोहन नाथ धर पीठ पर प्रोफेसर अध्यक्ष, संस्कृत विभाग के रूप में कार्यभार सम्भाला । दिल्ली विश्वविद्यालय में उनका आना उनके जीवन का मील का पत्थर बन गया ।

(1) संस्कृत-संस्कृति साधना-कमल आनन्द प्रथम खण्ड प्रा सं-1, 11

1960 ई० में इस कवि मनीषी ने 'श्रीबोधिसत्वचरितम्' नामक महाकाव्य की रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि एक वैय्याकरण विद्वान् महाकवि भी हो सकता है। वे कई वर्ष भारतीय विद्या के सम्पादक भी रहे । वे भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के स्नातकोत्तर एवं शोध-विभाग के निर्देशक एवं संग्राहाध्यक्ष भी रहे। वे आल इण्डिया ओरियन्टल कान्फ्रेन्स, दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, दि भारत इतिहास संशोधन मण्डल आदि विभिन्न संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े रहे । डा० सत्यव्रत के कार्यकाल की एक अन्य स्मरणीय उपलब्धि यह भी थी कि संस्कृत पत्र--पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध लेखों की विवरणात्मक सूची की योजना तैयार करना ।[2]

**महाकवि की रचनाएँ** -- एक लेखक के रूप में डा० सत्यव्रत शास्त्री का योगदान सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक दोनों प्रकार के लेखन क्षेत्र में रहा है । इन्होंने 12 वर्ष की आयु में 'षड्ऋतुवर्णनम्' नामक खण्डकाव्य की रचना की जिसका प्रकाशन 1942 ई० में संस्कृत-रत्नाकर पत्रिका जयपुर से हुआ। सृजनात्मक लेखक के रूपी में इन्होंने अनेक ग्रन्थों पर कार्य किया-

1. बृहत्तरम् भारतम्-1957
2. बोधिसत्वचरितम्-1960
3. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम् -1967
4. इन्दिरागाँधीचरितम्-1967
5. शर्मण्यदेशसुतरां विभाति-1976
6. थाइदेशविलासम्-1979
7. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्य-1990
8. पत्रकाव्यम्-1994

आलोचनात्मक लेखक के रूप में डा० सत्यव्रत शास्त्री ने निम्न ग्रन्थों की रचना की है।

1. Essay on Ideology - 1963
2. The Ramayana-Aligustic Study - 1964
3. Studies in Sanskrit & Indian Culture in Thailand - 1982
4. Kalidasa in Modern Sanskrit literature - 1991
5. New Experiments in Kálidasa-1994
6. Studies in the language & the poetry of the Yogavasistha.[3]

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त डा० सत्यव्रत ने ए०ए० मेक्डॉनल द्वारा रचित 'वैदिक ग्रामर फार स्टूडेन्ट' का हिन्दी अनुवाद किया । सुभाषितसाहस्री नामक ग्रन्थ के महत्वपूर्ण एक हजार सुभाषितों का हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत कर सहृदयों को रसाप्लांवित किया है। संस्कृत-वाङ्मय का शायद ही कोई ऐसा कोण हो जो उनके अध्ययन-अध्यापन और ग्रन्थरचना से स्पष्ट न हुआ हो। उन्होंने विशाल -संस्कृत-वाड्मय के अधिकांश पक्षों पर प्रामाणिकता से प्रकाश डाला है । डा० सत्यव्रत का संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है। इससे पाठक लाभान्वित हुए हैं और भविष्य में भी लाभ प्राप्त करते रहेंगे ।

(2) सत्यव्रत शास्त्री से स्वयं प्राप्त (3) www.rastriysanskritsansthan.com

कविवर डा० सत्यव्रत शास्त्री की मौलिक कृतियों में तीन महाकाव्य, तीन खण्डकाव्य, एक प्रबन्धकाव्य तथा दो खण्डों का पत्रकाव्य है जिनकी पद्यसंख्या षट्सहस्र से भी अधिक है। इनके सभी मौलिक ग्रन्थ भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में शोध का विषय बन चुके हैं। डा० सत्यव्रत शास्त्री की इन रचनाओं के अतिरिक्त 150 से अधिक शोध-निबन्ध 90 से अधिक पुस्तकों के प्राक्कथन तथा भारी संख्या में पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। काव्य के रूप में जिन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है वे कुछ इस प्रकार हैं।[4]

1. इन्दिरागांधीचरितम्
2. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्
3. श्रीबोधिसत्वचरितम्
4. बृहत्तरंभारतम्
5. शर्मण्यदेशसुतरां विभाति
6. थाईदेशविलासम्
7. श्रीगुरुगोविन्दसिंह चरितम्
8. पत्रकाव्यम्
9. दिने दिने याति मदीयजीवितम्

(1) इन्दिरागांधीचरितम्–डा० सत्यव्रत ने इस काव्य में श्रीमती इन्दिरागांधी के जन्म से लेकर सन् 1976 ई० तक की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन किया है।[5]

(2) श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्– डा० सत्यव्रत शास्त्री द्वारा रचित इस महाकाव्य की कथावस्तु थाईलैंड में मौलिक नाटकीय या यत्र-तत्र चित्रकारों द्वारा चित्रित साहित्यिक रूप में प्रचलित रामकथा के आधार पर है। कवि ने इस कथावस्तु का आधार बुद्धयोद् नामक विद्वान् द्वारा लिखित रामकथा और उस समय प्रचलित लोक-कथाओं को आधार माना है। शास्त्री दस वर्षों तक किसी न किसी पदवी पर थाईलैंड में रहे। वहाँ रहते हुए उन्होंने किसी न किसी रूप में विद्यमान रामकथा को एकत्रित किया और अपनी वैदुष्यपूर्ण कवित्वशक्ति द्वारा इसको काव्यत्व रूप प्रदान किया।[6]

(3) श्रीबोधिसत्वचरितम्:– श्री बोधिसत्वचरितम् युवावस्थीय प्रथम महाकाव्य है। इस काव्य का प्रथम प्रकाशन 1960 ई० में हुआ था। इसके चौदह सर्गों में बोधिसत्व के अवदानों का वर्णन है। इस काव्य में भगवान् बुद्ध को पाँच रूपों में चित्रित किया गया है। दूसरे से पांचवे सर्ग में राजा रूप में पहले एवं आठवें में क्रमशः भिक्षु, कृषक एवं आचार्य रूप में। कवि के इस भागीरथ प्रयत्न में वे आर्यशूर से पूर्णतया तुलनीय हैं। आर्यशूर ने पहली बार जातक कथाओं को संस्कृत गद्य में रूपान्तरित करके उन्हें पाठकों के लिए सुलभ बनाया था।

(4) सत्यव्रत शास्त्री से स्वयं प्राप्त (5) इन्दिरागाँधीचरितम्-डा० सत्यव्रत शास्त्री पृ 2-25 भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली 1976 (6) श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्-डा० सत्यव्रत शास्त्री-पृ०-56 मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली-1990

**(4) बृहत्तरं भारतम्**– बृहत्तरं भारतम् प्राध्यापक बनने के पश्चात् डा०सत्यव्रत द्वारा सौ पद्यों में निबद्ध खण्डकाव्य है। यह काव्यकृति दो अंशो में विभक्त है। काव्य के प्रथम अंश में प्राचीनकालीन भारतीय राजाओं द्वारा दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों पर औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना का वर्णन है । द्वितीय अंश में द्वीपों की भाषा संस्कृति धर्म पर भारतीय प्रभाव को दर्शाता है।

**(5) शर्मण्यदेश:सुतरां विभाति**–यह कृति सौ पद्यों में यात्रा विवरण से सुसम्बद्ध है। लेखक को 1975 ई० में यूरोपीय यात्रा के दौरान जर्मनी जाने का अवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि जर्मन प्रवास अल्प अवधि का ही था तथापि उन्होंने पर्याप्त भ्रमण किया । इसका उद्देश्य भारत और जर्मनी के मैत्री एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को भी स्थापित करना था ।

**(6) थाईदेशविलासम्** – थाईदेशविलासम् थाई इतिहास एवं संस्कृति का परिचय देने वाली सुन्दर काव्यकृति है। इसमें 121 मनोरम पद्यों का वर्णन है । विदेश के इतिहास तथा संस्कृति को विषय बनाकर लिखी गई यह कृति आधुनिक संस्कृत साहित्य की एकमात्र रचना है । कवि के अनुसार धर्म, राष्ट्र, नृप तथा संस्कृति रूपी चतुर्कोणीय स्तम्भ पर सम्पूर्ण थाईलैण्ड विद्यमान है ।[7]

**(7) श्री गुरुगोविन्दसिंहचरितम्** – यह खण्डकाव्य सिख सम्प्रदाय के दसवें गुरुश्रीगोविन्दसिंह की संस्कृत पद्यबद्ध जीवनी है। "जात: पुरा भारतभूमिभागे गोविन्दसिंहो दशमो गुरूणाम्। तस्यैव सद्धर्मधुरंद्धुरस्य गीर्वाणवाण्या चरितम् ब्रवीमि।।"[8] इसका प्रयोजन सिक्खों के दसवें एवं अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह की जीवनी को लिपिबद्ध करना है।

**(8) पत्रकाव्यम्** – 'पत्रकाव्यम्' एक नई विधा का अनोखा काव्य है। उसमें लेखक ने विभिन्न पत्रों का एकत्रीकरण किया है। यह पत्रकाव्यम् कहीं शुभाशंसाएँ विखेरता है तो कहीं वर्धापनों की फुहार बरसाता है। कहीं पर मित्रता की मधुरता है तो कहीं पर अकेलेपन की विकलता है।

**(9) दिने दिने याति मदीयजीवितम्** – यह ग्रन्थ नवीन विधा के अन्तर्गत डायरी–रूप में लिखा है। इसका लेखन–काल दिनांक 14.01.2006 से दिनांक 19.06.2007 तक है ।[9] इसमें उन्होंने अपने जीवन, स्वास्थ्य, यात्रा–वर्णन क्रियाकलाप, मनोभाव व अन्य विशिष्ट वृत्तों का वर्णन किया है । भावात्मक और कलात्मक दोनों ही दृष्टियों से यह वर्णन अनुपम है। विषय गाम्भीर्य व व्यक्तिगत जीवन के अनेक

---

(7) थाइदेशविलासम्--डा० सत्यव्रत शास्त्री पृ०- 11 ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली–1979

(8) श्रीगुरुगोविन्दसिंह चरितम्–डा० सत्यव्रत शास्त्री पृ–11 गुरु गोविन्द सिंह फाउण्डेशन पटियाला–1967

(9) दिने दिने याति मदीयजीवितम्–डा० सत्यव्रत शास्त्री पृ–11–266 विजया बुक्स 1/10753 सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–2011

पक्षों का स्पष्ट प्रकाशन इस डायरीग्रन्थ में देखने को मिलता है ।

**महाकवि का योगदान** – कवि की विभिन्न रचनाओं में विषय-वैविध्य की विशेषता पाई गई है कि विभिन्न द्वीपों की भाषा-संस्कृति तथा धर्म पर भारतीय संस्कृति किस प्रकार प्रभाव डालती है? कवि ने थाईलैण्ड के प्रारम्भिक नाम एवं ऐतिहासिक राजवंशावली की चर्चा करते हुए यह बतलाने का प्रयास किया है कि भारत का थाईलैण्ड से प्राचीन काल से ही सम्बन्ध रहा है ।[10]

**संस्कृति चित्रण**– लेखक ने बृहत्तरभारतम् रचना में दक्षिण-पूर्व एशिया के भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को गौरवशाली रूप में बतलाया है। भगवान् बुद्ध के चरित्र की विशेषताओं को एक ओर उदात्त और अतिप्राकृतिक बताया गया है। थाइदेशविलासम् के माध्यम से कवि ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से थाईलैण्ड को भारतीय संस्कृति का ऋणी बतलाने का प्रयास किया है ।

**पाश्चात्य संस्कृति सम्बन्ध**– जर्मनी-प्रवास काल में कवि ने पर्याप्त भ्रमण किया । जिसका उद्देश्य यात्रावृतान्त का वर्णन ही नहीं अपितु भारत एवं जर्मनी के बीच मित्रता एवं सद्भावना सम्बन्धों को स्थापित करना था । कवि ने थाईदेशविलासम् में भारतीय संस्कृति का थाईलैण्ड संस्कृति के साथ सम्बन्ध बताया है। फिर चाहे वह शैवधर्म हो, बौद्ध धर्म हो, रामायण हो, ब्रह्मपूजा की भावना हो, भारतीय संस्कृति से जुड़ा हुआ बतलाया है ।

श्रीरामकीर्ति महाकाव्यम् में कवि थाईरामायण की मूल कथा को वाल्मीकि रामायण की घटनाओं से मिलती जुलती तथा कुछ परिवर्तन रूप में सामने लाते हैं । कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि थाई रामकथा भी भारतीय रामायण के समान ऐतिहासिकता को लिए हुए राम-सीता का पुनर्मिलन करवाती है ।

**राजनीतिक परिस्थितियों का दर्शन**– कवि बृहत्तरभारतम् काव्य के पहले भाग में प्राचीनकालीन भारतीय राजाओं द्वारा दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों पर औपनिवेशिक सत्ता को दिखलाते हैं । शैलेन्द्रराज्य, बालिद्वीप तथा कम्बुजद्वीप के समग्र इतिहास में उसका उत्थान व पतन स्पष्ट सामने लाए हैं । इन्दिरागांधीचरितम् में इन्दिरा को राष्ट्रसेवी तथा एक परिपक्व राजनेत्री के रूप में उभारा है। थाईदेश और भारत के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों के वर्णन में लेखक ने सांस्कृतिक राजदूत का गौरव प्राप्त किया है।

**शोधकर्त्री, H-79, Alpha -2, गौतमबुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा**

---

(10) थाईदेशविलासम्-डा० सत्यव्रत शास्त्री पृ-23 11 ईस्टर्न, बुक लिंकर्स, दिल्ली-1979

# किरातार्जुनीय और राजनैतिक स्वच्छता

–श्री गुलशन शर्मा

विश्व-साहित्य में संस्कृत-साहित्य का स्थान सर्वोपरि है । संस्कृत-साहित्य अत्यन्त विशाल एवं ज्ञान से परिपूर्ण है । विश्व का कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिसकी परिकल्पना संस्कृत-साहित्य में न की गई हो । वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा जो स्वच्छ भारत अभियान शुरू किया गया है, उसकी परिकल्पना भी हमारे ऋषियों तथा कवियों ने बहुत वर्ष पूर्व ही कर दी थी । जिसका अवलोकन उनका साहित्य पढ़ने से होता है । भारत सरकार द्वारा जो स्वच्छ भारत अभियान शुरू किया गया है वह केवल भौगोलिक स्वच्छता तक ही सीमित है । परन्तु संस्कृत-साहित्य में जिस स्वच्छ ही भारत की परिकल्पना की गई है, उसका स्तर केवल भौगोलिक स्वच्छता से नहीं अपितु राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्वच्छता तथा मन-वचन-कर्म एवं व्यवहार में स्वच्छता से है ।

किसी भी देश को सम्पूर्ण रूप से स्वच्छ एवं सुशासित बनाने के लिए राजनैतिक स्वच्छता का होना अनिवार्य है । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भारवि कृत किरातार्जुनीयम महाकाव्य मिलता है जिसमें राजनैतिक दृष्टिकोण से स्वच्छ भारत की परिकल्पना की गई है। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था एवं भारवि कृत किरातार्जुनीय में वर्णित राजनीतिक व्यवस्था में बहुत अन्तर है । वर्तमान समय में राजनीतिक मूल्यों का निरन्तर परिवर्तन हो रहा है तथा मत-मतान्तरों एवं सम्प्रदायों को धर्म की संज्ञा प्रदान कर धर्म को राजनीति से दूर रखने का प्रयास किया जा रहा है वहीं किरातार्जुनीय में प्रतिपादित राजनीति का मुख्य आधार धर्म ही है । राजा राजधर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है तथा अपने समस्त कार्य धर्मानुसार करता है । जहाँ तक कि न्याय का मूलाधार भी धर्म को माना जाता था । किरातार्जुनीय में वनेचर दुर्योधन की न्याय-व्यवस्था का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट से प्रतिपादित है उसका तात्पर्यथा राजा को शास्त्रों द्वारा द्वारा उपदिष्ट एवं धर्मसम्मत न्याय का पालन स्वयं भी करना चाहिए तथा प्रजा से भी करवाना चाहिए। अतः राजा को अधर्माचरण करने वाले को पक्षपात रहित होकर दण्डित करना चाहिए।[1] इसके अतिरिक्त नयेन जेतुं[2] जगतीं सुयोधनः, नयापादित-सिद्धिभूषण[3], ''नयहीनादपरज्यते जनाः[4]

(1) किरातार्जुनीय, 1.13 (2) वहीं, 1.7 (3) वही, 2.32 (4) वही, 2.49

"न्यायधारा हि साधवः"[5] आदि सुभाषित भी न्याय की स्वच्छता को प्रतिष्ठित करते हैं । इसलिए यदि सम्पूर्ण रूप से स्वच्छ-भारत का निर्माण करना है तो न्याय-व्यवस्था को भी उसी श्रेणी में रखते हुए सभी के लिए समान दण्ड-व्यवस्था की परिकल्पना करनी होगी ताकि भारत का प्रत्येक नागरिक कानूनों का पालन करना अपना परम धर्म समझे तथा कोई भी व्यक्ति राष्ट्र-विरुद्ध गतिविधियों में संलग्न न हो ।

किसी भी राजनैतिक व्यवस्था में राजा का प्रमुख स्थान होता है । राजा ही सम्पूर्ण राज्य का संचालन करता है । इसलिए स्वच्छ-भारत के निर्माण के लिए राजा का आचरण से स्वच्छ होना भी आवश्यक है । किरातार्जुनीय में भी स्वच्छ-भारत की परिकल्पना करते हुए बताया गया है कि राजा को शुभ गुणों से युक्त यश-रूपी अपनी सम्पदा को निरन्तर बढ़ाना चाहिऐ।[6] वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं अहंकार रूपी शत्रुओं को जीतकर आलस्य-रहित होकर नीतियुक्त मार्ग से अपने राज्य का विस्तार करे।[7] उसे सर्वदा अहंकार रहित होकर अपने अनुजीवियों के प्रति सखासदृश व्यवहार करना चाहिए।[8] उसे अपने तीनों पुरुषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ एवं मोक्ष का उचित विभाजन करके सेवन करना चाहिए । ताकि उसके ये तीनों पुरुषार्थ परस्पर एक-दूसरे को बाधित न करें अर्थात् वह धर्म से युक्त अर्थ एवं काम का सेवन करे।[9] इसी प्रकार राजा को धैर्य से युक्त भी होना चाहिए । इसलिए महाकवि भारवि का कहना है कि राजा एवं अन्य मन्त्रियों को अच्छी तरह से विचार करके ही अपना कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चित करना चाहिए। उन्हें बिना अच्छी तरह विचार किए किसी भी कार्य को प्रारम्भ नहीं करना चाहिए।[10] इसी प्रकार राजा को न तो अत्यन्त क्रोध करना चाहिए और न ही अत्यन्त मृदुल होना चाहिए । बल्कि उसे समान भाव से समय आने पर मृदुलता एवं तीक्ष्णता का व्यवहार करना चाहिए।[11]

स्वच्छ राजनीतिक व्यवस्था के लिए मन्त्रियों के सहयोग की भी अत्यधिक आवश्यकता होती है। मन्त्रियों के सहयोग के बिना राज्य का कोई भी कार्य समुचित रूप से नहीं हो सकता है । महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय में मन्त्रिमण्डल के महत्व को समुचित रूप से परिभाषित किया है । कवि ने जिस स्वच्छ-भारत की परिकल्पना की है उसमें राजा एवं मन्त्रियों के बीच सामञ्जस्य का होना अत्यधिक आवश्यक बताया है । कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि स्वच्छ राजनीति एवं स्वच्छ राष्ट्रनिर्माण के लिए राजा एवं मन्त्रियों को परस्पर अनुकूल रहकर कार्य करने चाहिए।[12] मन्त्री को समय-समय पर अपने स्वामी को हितकारक परामर्श देना चाहिए तथा राजा को भी अपने मन्त्री के हितकारक परामर्शों को सुनना चाहिए । क्योंकि सम्पूर्ण समृद्धियाँ राजाओं और

---

(5) वही, 11.30 (6) तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः। वही, 1.8 (7) वही, 1.9 (8) वही, 1.10
(9) वही,1.11 (10) वही, 2.30 (11) किरातार्जुनीयम्, 2.38 (12) वही, 2,27-28

मन्त्रियों के परस्पर अनुकूल होने पर ही होती हैं । क्योंकि मन्त्रियों एवं मित्रगणों से रहित शासक के राज्य को विपक्षी राजा तुरन्त छीन लेता है।[13] भारवि के अनुसार स्वच्छ राष्ट्र के निर्माण के लिए राजा एवं मन्त्रियों की वाणी भी स्वच्छ होनी चाहिए।[14] यहाँ कवि का अभिप्राय यह है कि राजा एवं मन्त्रियों में अच्छे वक्ता की सभी विशेषताएं होनी चाहिए। उनकी वाणी में स्पष्टता एवं अर्थ-गम्भीरता होनी चाहिए। उनके भाषण में कहीं पर भी अप्रासङ्गिक बातें नहीं होनी चाहिए। कहीं पर भी अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं होना चाहिए और न ही उनकी युक्तियों अथवा तर्कों में शास्त्रों का विरोध हो । परन्तु अत्यधिक दुःख का विषय है कि वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में इसका आभाव है सर्वथा अतः यदि सभी राजनेता परस्पर द्वेष छोड़कर भद्र एवं शास्त्रोंक्त वाणी का प्रयोग करें तो स्वच्छ राजनैतिक व्यवस्था के निर्माण का मार्ग और भी सुगम हो जाएगा ।

भारवि ने किरातार्जुनीय में आदर्श सैन्य-व्यवस्था की परिकल्पना करके स्वच्छ-भारत निर्माण में उनके सहयोग को उजागर किया है । भारवि के अनुसार राष्ट्र की सेना बलवान्, स्वाभिमानी, यशस्वी एवं स्वामीभक्त सैनिकों से युक्त होनी चाहिए। समस्त सैनिक राष्ट्र की उन्नति में ही अपना हित समझें। वे राजा के हित के लिए अपने प्राणों की भी परवाह न करें।[15] इसी प्रकार कार्यों में नियुक्त सेवकों को चाहिए कि वे अपने स्वामी के साथ छल-कपट एवं झूठ का व्यवहार न करें।[16]

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि यदि भारत को सम्पूर्ण रूप से स्वच्छ बनाना है तो राजनीति में व्याप्त सभी दोषों को दूर करना होगा । आज जरूरत है कि भारत का प्रत्येक राजनेता एवं सरकारी कर्मी भारवि के बताए मार्ग का अनुसरण करें । साथ ही वे अपने आपको उत्तम प्रशासक के रूप में प्रजा के समक्ष स्थापित करे। वस्तुतः वर्तमान काल में यदि किरातार्जुनीय में वर्णित राजनीतिक सिद्धान्तों को कार्यान्वित कर दिया जाए तो स्वच्छ-भारत का निर्माण होना पूर्णतः सम्भव है।

**शोधछात्र,वी.वी.बी. आई. एस एण्ड आई.एस ( पी.यू. )**
**साधु-आश्रम, होशियारपुर ।**

---

(13) किरातार्जुनीयम्, 2.53 (14) वही, 2.27-28 (15) वही, 1.19
(16) वही, 1.4

# संस्थान-समाचार

**दान–**

डॉ. शिव कुमार वर्मा, डिप्टी लाईब्रेरियन, वी.वी.बी.आई.एस. (पी.यू.) होशियारपुर। 2000/-

डॉ. हरि मित्र शर्मा, वी.वी.आर.आई, होशियारपुर 5000/-

डॉ. वसुन्धरा रिहानी, 1617, सेक्टर 44-बी, चण्डीगढ़ 5000/-

श्री एन.के. पाठक, वी-31, न्यू गुरु तेग बहादुर नगर, जालन्धर 2500/-

लै. कर्नल वी.वी. मनोचा, सी-79, एन.डी.एस. ई०-II, नई दिल्ली 5000/-

श्रीमती सन्तोष हसीजा, 31/12 GF, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली 1000/-

डॉ. अशोक सूद, कोतवाली बाजार, होशियारपुर 2500/-

प्रो. रेणू कपिला, बी-III 309, डी.सी.रोड़, होशियारपुर 1000/-

श्री के.वी. बांसल, एच 41 बी, एस.एफ.एस., फ्लैटस, साकेत, नई दिल्ली 5000/-

श्री वी.एम. भल्ला, 3367, 27 डी, चण्डीगढ़ 10,000/-

श्रीमती अरुणा सूद, निकट गांधी लाईब्रेरी, बहादुरपुर, होशियारपुर 1100/-

श्री रामभज मदान, 126, राजा गार्डन, नई दिल्ली-110015 1100/-

सर्वश्री कैलाश चन्द, वीरेन्द्र कुमार सूद खानपुरी गेट, होशियारपुर 1100/-

सर्वश्री श्रेयांस इन्डस्ट्रीज लि., अहमदगढ़, संगरूर 5000/-

डॉ. सहदेव रतरा, ए/32/5, डी.एल.एफ. सिटी फेज-1, गुड़गांव (हरियाणा) 1001/-

सुश्री सुरेखा सब्बरवाल, वी-5, पम्पोश ऐनक्लेव, नई दिल्ली 5000/-

दयाल सिंह लाईब्रेरी ट्रस्ट सोसाईटी, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली 2000/-

सर्वश्री रविप्रकाश आनन्द, आनन्द भवन, पलटन बाजार, गोहाटी 1000/-

---

**हवन-यज्ञ–** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। फरवरी, 2016 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का संकीर्तन भी नियमित रूप से किया गया।

**बधाई –**

पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधु आश्रम, होशियारपुर के भूतपूर्व चेयरमैन प्रो. प्रेम लाल शर्मा जी के सुपुत्र चिरंजीव चन्द्रमौली का शुभ विवाह 24-2-2016 को होशियारपुर में संपन्न हुआ। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से इस मांगलिक अवसर पर बहुत-बहुत बधाई तथा नवदम्पति के लिए सुखी गृहस्थ-जीवन की कामना की जाती है।

संस्थान के कार्मिष्ठ श्री अशोक कुमार को उनके पौत्र ( श्री वासुदेव शर्मा के सुपुत्र) के जन्म पर संस्थान के कार्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई दी जाती है और सभी की ओर से शिशु की दीर्घायु तथा कल्याण की कामना की जाती है।

**शोक- समाचार-**

पंजाब विश्वविद्यालय पटल के कर्मिष्ठ श्री चन्दन कुमार के पिता श्री जोगिन्दर कुमार का होशियारपुर में देहान्त हो गया। संस्थान के कर्मिष्ठ वर्ग की ओर से शोक संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट की जाती है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा परिवार को इस दुख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

**ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।**

# विविध समाचार

➳ **वै.औ.अ.प- भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून में स्वर्ण जयंती 50वीं आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठी व स्वर्ण जयंती व्याख्यान का आयोजन** - राजभाषा अनुभाग, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान द्वारा जनवरी 2002 से आयोजित की जा रही 'आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठियों' की श्रृंखला में 50वीं संगोष्ठी का आयोजन 'स्वर्ण जयंती संगोष्ठी' के रूप में किया गया और इस अवसर पर श्री देवेंद्र मेवाड़ी, चर्चित विज्ञान लेखक तथा मुख्य अतिथि ने 'हिंदी में विज्ञान लेखन' पर 'स्वर्ण जयंती' व्याख्यान भी दिया।

संगोष्ठी तथा स्वर्ण जयंती समारोह के संयोजक एवं राजभाषा अनुभाग के प्रभारी डॉ. दिनेश चंद्र चमोला ने मुख्य अतिथि का परिचय दिया और कहा कि कोई भी देश उन्नति की पराकाष्ठा पर तभी आसीन हो सकता है जब वहां वैज्ञानिक समृद्धि हो। वैज्ञानिक अनुसंधानों तथा खोजों को जन-जन तक पहुंचाने का सशक्त माध्यम है, हिंदी एवं भारतीय भाषाएं।

इसके उपरांत कार्यकारी निदेशक डॉ. एस एम नानोटी ने अपने उद्बोधन में संगोष्ठियों की 'स्वर्ण जयंती' पर सभी संबंधितों को बधाई देते हुए मुख्य अतिथि श्री मेवाड़ी का स्वागत किया। पहले सत्र में संगोष्ठी की प्रस्तुतियां दी गई। इसमें डॉ. उमेश कुमार डॉ. सनत कुमार, श्री मनोज कुमार, श्री प्रवीण कुमार खत्री, डॉ. बी.आर. नौटियाल तथा डॉ. दीपक टंडन आदि वैज्ञानिकों ने अपनी-अपनी प्रस्तुतियां दीं।

दूसरे सत्र में 'स्वर्ण जयंती व्याख्यान' देते हुए श्री देवेंद्र मेवाड़ी ने 'हिंदी में विज्ञान-लेखन' अथवा विज्ञान-लेखन पर एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। श्री मेवाड़ी के अनुसार शोध का, शोध-प्रयोगशाला से आम आदमी तक पहुंचना आवश्यक है। श्री मेवाड़ी का सुझाव था कि विज्ञान और साहित्य दोनों प्रारंभ से ही स्कूलों में साथ-साथ सिखाए जाने चाहिएं। श्री मेवाड़ी ने वैज्ञानिक और साहित्यिक के अनुपम मेल, रूसी लेखक व्लादीमीर नोबोकोव का उदाहरण प्रस्तुत किया, जो एक कीट-विज्ञानी होने के साथ ही 'लोलिता' जैसी कालजयी साहित्यिक कृति के लेखक भी थे।

श्री मेवाड़ी ने कहा कि साहित्य और विज्ञान अलग-अलग नहीं हैं। जहां विज्ञान में भी भावनाओं का दर्शन किया जा सकता है, वहीं साहित्यकार भी वैज्ञानिक अविष्कारों का उपयोग करता हैं। समारोह के अंत में डॉ. दिनेश चमोला ने श्री मेवाड़ी, वैज्ञानिक, प्रस्तुतकर्ताओं तथा श्रोताओं सहित सभी का धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्य के सफल संचालन में राजभाषा अनुभाग के कर्मचारियों का सक्रिय योगदान रहा।

**डॉ. दिनेश चंद्र चमोला, प्रभारी, राजभाषा अनुभाग,**
**भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून ( उत्तराखंड )।**

# प्रपत्र-४

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | प्रकाशन का स्थान | ....... | विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होश्यारपुर। |
| २. | मुद्रण स्थान | ....... | विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रैस, साधु-आश्रम, होश्यारपुर। |
| ३. | प्रकाशन की अवधि | ....... | मासिक। |
| ४. | मुद्रक का नाम | ....... | प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल |
| | राष्ट्रीयता | ....... | भारतीय |
| | पता | ....... | विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर। |
| ५. | प्रकाशक का नाम | ....... | प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल |
| | राष्ट्रीयता | ....... | भारतीय |
| | पता | ....... | विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर। |
| ६. | सम्पादक का नाम | ....... | प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल |
| | राष्ट्रीयता | ....... | भारतीय |
| | पता | ....... | विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर। |
| ७. | उन व्यक्तियों के नाम व पते जो इस समाचार-पत्र के मालिक या सांझेदार हैं या इसकी सारी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हैं। | ....... ....... | विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान-सभा (वी. वी. आर. आई. सोसाइटी), साधु आश्रम, होश्यारपुर। |

मैं, प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह०

इन्द्रदत्त उनियाल

## (संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर ( पंजाब ) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ ( पंजाब ) से २८-२-२०१६ को प्रकाशित।